विषयानुक्रम ।

—:*:—

Printed by K. C. Banerjee at the Anglo-Oriental Press,

LUCKNOW.

and

Published by Swami N. S. Swayam Jyoti,

Secretary,

The Rama Tirtha Publication League : Lucknow.

1920.

श्री

स्वामी रामतीर्थ ।

उनके सदुपदेश—भाग ३ ।

प्रकाशक:

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग ।

लखनऊ ।

प्रथम संस्करण [illegible] —::— [illegible]

वार्षिक मूल्य के हिसाब से:

सादी ।-) | डाक व्यय सहित | सजिल्द ॥)

फुटकर:

सादी ॥ः | डाक व्यय अलग | सजिल्द ॥)

[वार्षिक मूल्य डाक व्यय सहित सादी २॥) सजिल्द ४)]

निवेदन।

क्षमा प्रार्थना।

दूसरे खण्ड के बाद यह तीसरा खण्ड प्रकाशित करने में अधिक समय हो गया है, जिसके लिये हम अपने स्थायी ग्राहकों से अवश्य क्षमाप्रार्थी हैं। यद्यपि अनेक सकारण कठिनाइयाँ और अनिवार्य बाधायें ही इसके विलम्ब के कारण हैं, तथापि उनके विस्तारविशेष के पूर्व हम यह विश्वास दिलाते हैं कि:—

(१) इन कठिनाइयों के दूर करने का हम पूरा उद्योग कर रहे हैं और आशा है कि शीघ्र निवारण हो जायगा।

(२) जिन सज्जनों से २॥) या ४) अग्रिम मूल्य प्राप्त हुआ है, उनकी सेवा में १००० पृष्ठ की पुस्तकें उतने ही मूल्य में अवश्यमेव पहुँचाई जायँगी। कृपया वे इस बात में निःसन्देह और निश्चिन्त रहें।

(३) लीग केवल पारमार्थिक संस्था है, स्वामी राम के भक्तों द्वारा इसका संगठन हुआ है, और उनके उपदेशों का मूल रूप में, सस्ते मूल्य पर,तथा मनोहर आकार प्रकार में प्रचार करना ही इसका परम उद्देश्य और कर्त्तव्य है, इस बात का निरन्तर स्मरण रक्खें।

(४) व्यापार वृत्ति इसका लक्ष्य नहीं। व्यापारियों की यह संस्था ही नहीं। इसके धन माल पर किसीका जातीय स्वत्त्व नहीं। किसी व्यक्ति विशेष का इसमें निजी स्वार्थ नहीं। राम के भक्तों की दान की हुई रकम ही इसकी पूँजी है और इसीसे इसका कार्य यथाशक्ति चलाना पडता है। राम के भक्तों ने संरक्षक, सभासद तथा संसर्गी होकर इसकी पूँजी एकत्रित की है। उनके इस प्रेमधन से राम के प्रेमामृत का राम की प्राणप्रिय जनता को पान कराना इस संस्था का प्रेमकार्य है। राम के सेवक इस सेवा में हमारे साथ श्रद्धा, सरलता और शक्तिपूर्वक सहकारी हो यह हमारी अभिलाषा है, और राम की आत्मा इस धर्मकार्य पर आशीर्वाद की वर्षा करे यही प्रार्थना है।

विलम्ब के कारण।

कागज इत्यादि वस्तुओं की महँगी के इस कठिन काल में उन वस्तुओं का यथोचित संग्रह हम नहीं कर सकते, समय २ पर थोडी २ चीजें खरीद कर हमें कार्य चलाना पडता है। वस्तुओं के भाव दिन प्रति दिन बढते ही चले जा रहे हैं और साथ २ स्थिर भी नहीं रहते। वस्तुओं

यथा समय प्राप्त नहीं होती । लीग का अपना प्रेस नहीं । प्रारम्भ में जिस हिसाब से इस ग्रन्थावली के १००० पृष्ठ का अग्रिम मूल्य २।।) तथा ४) रक्खा गया था, उससे लगभग वस्तुओं का भाव दुगुना हो चला है। ऐसी अवस्था में हमें कुछ नुकसान जरूर उठाना पडेगा । तथापि आगामी दीपमाला पर्यन्त के ग्राहकों को पूर्व संकलपानुसार ये पुस्तकें इसी मूल्य पर अवश्य दी जायंगी । आगे के लिये तो—"न जाने जानकीनाथ प्रभाते किं भविष्यति" ।

दो उपाय ।

विलम्ब के कारणों के साथ अन्य भी बहुत सी बाधायें हैं तथापि विस्तार भय से यहां वर्णन नहीं करते । निवारण के जो दो प्रधान उपाय हमारी दृष्टि में इस समय दिखाई देते हैं, वे ये हैं । आशा करते हैं, कि हमारे बन्धुगण इसके लिये अवश्य उद्योग करेंगे ।

(क) हमारे राम प्यारों को चाहिये कि इन पुस्तकों की बिक्री में तनमन से सहायता दें । अपने मित्रों और सम्बन्धियों में इसका प्रचार करने का प्रयन्त करते रहें । वर्त्तमान पत्रों के इश्तिहारों में खर्च करना, तथा बुकसेलरों को कमीशन देना मानों एक प्रकार से पुस्तकों की कीमत बढा कर राम के भक्तों को नुकसान पहुँचाना है । इस लिये यह परम कर्त्तव्य है कि जहां तक हो सके ग्रन्थावली के स्थायी ग्राहक बढाने का वे प्रयत्न करें । जिन सज्जनों ने आज पर्यन्त इसमें उद्योग किया है, वे धन्यवाद के पात्र हैं ।

(ख) लीग की आर्थिक स्थिति का बलवत्तर होना अत्यन्त आवश्यक है । लीग के प्रबन्ध व्यय में सहायता हो, आर्थिक स्थिति में सुदृढता हो, पुस्तकों को लागत मूल्य पर बेचने के उद्देश में सफलता हो, और राम प्यारों की सेवा करने का हमारा संकल्प सिद्ध होता रहे—ऐसे ही पवित्र उद्देश्यों की पूर्त्ति की सरलता के लिये इस संस्था ने एक सहायता फंड खोला है । जिन उदार सज्जनों ने आज पर्यन्त जो कुछ सहायता दी है, उनकी नामावलि भी इसके साथ है । उनके धर्मभाव के लिये वे सब के हार्दिक धन्यवाद और प्रशंसा के पात्र हैं । आशा है कि लीग से सहानुभूति रखने वाले अन्य राम सेवक भी अपना दानगौरव सिद्ध करेंगे ।

स्वामी एन. एस. स्वयं ज्योति,

मन्त्री ।

सहायता फंड में दान देने वाले सज्जनों की
नामावली।

---

२५) श्रीयुत् कुञ्जबिहारी जी, बेतुल।
५) ,, आय. एम. राय।
५) श्रीमान् स्वामी बुद्धदेवजी।
५) श्रीयुत् पेसुमल चन्दवानी, लाहौर।
२) ,, परमेश्वरी दास, लखनऊ।
१००) एक हितैषी।
२०) श्रीयुत् राधामोहन लोनीवाल, बम्बई।
२) ,, परशराम खुशीराम, लाहौर।
६००) श्री स्वामी रामलाल जी इन्दौर*।
१४१) यह रक़म निम्नालिखित सज्जनों से श्रीयुत् गुलाबभाई
——————भीमभाई देशाई, दिल्ही द्वारा प्राप्त हुई है।
६०५) रु० कुल

---

११) श्रीयुत् जमनादास दलाल, कानपुर वाले; दिल्ही।
११) ,, अम्बाप्रसाद जादवजी ,,
११) ,, रतीलाल नारणदास गामी ,,
११) ,, गीरधरलाल हीरजी ,,
७) मेसर्स प्रागजी सुरजी की कम्पनी ,,
५) श्रीयुत् भगवानजी भाणजी ,,
५) ,, चीमनलाल चन्दुलाल ,,
५) लाला चुनीलाल रामजसराय ,,

---

* यह दान कुछ खास शर्तों पर प्राप्त हुआ है।

५) ,, चुनीलाल रामनारायण ,,
५) ,, रामकुमार मथुरादास ,,
५) ,, गोरखराम किशोरचन्द ,,
५) ,, गुटीराम शेरमल ,,
[illegible]
४) ,, नागरमल पाकरमल दलाल ,,
४) ,, द्वारकादास लक्ष्मीनारायण ,,
४) ,, रामचंद कुडामल ,,
३) श्रीयुत् नानुभाई खँडुभाई देशाई ,,
३) ,, शिवप्रसाद हीरालाल ,,
३) लाला जुगलकिशोर जंगलीमल ,,
२) ,, हरसहायमल्ल केदारनाथ ,,
२) श्रीयुत् श्रीपत गोरधनदास ,,
२) ,, हरप्रसाद मीठनलाल ,,
२) ,, भगवानदास नन्नुमल ,,
२) ,, गुटीराम केशवराम ,,
२) ,, मगनलाल वजेचन्द ,,
२) लाला वीसनचन्द दलाल, ,,
१) श्रीयुत् नटवरलाल गवरीशंकर पंडया, ,,
१) ,, भागचंद दुलीचन्द ,,
११) भाई श्रीराम रामनाथ, कानपुर।
२) मेमर्स दौलतराम काशीनाथ की कुं०, दिल्ली।

---

१४१) कुल

राम परिचय ।

श्रीयुत् पूर्णसिंह जी का एक संक्षिप्त लेख ।

किसी समय में इस देश के मनुष्यों ने विश्वव्यापी शान्ति के स्थापनार्थ परमात्मा से प्रार्थना की थी। जब कि वे युद्ध और विजय करते २ थक चुके थे, और दूर देशों में विजयपताका फहराकर घर लौटे, उन्होंने देखा कि सांसारिक साम्राज्य ऐसी तुच्छ वस्तु के लिये उनका आत्मविकास नष्ट हो चुका है। जब आर्यों को ज्ञात हुआ कि युद्धों में विजय पाने से लाभ के बदले हानि होती है, तो उन्होंने अपने मन को आत्मज्ञान की ओर फेरा। उनकी प्रवृत्ति त्याग की ओर हो गई और विजयकामना जाती रही। देश में शान्ति और प्रेम का प्रसार होने से यह देश निकटवर्ती जातियों का तीर्थ-स्थान होगया। उस समय से भारत वर्ष में त्यागयुक्त जीवन ही गौरवपूर्ण माना जाता है। यहां भारतवर्ष में किसी मनुष्य के धन, पद, एवं विद्या आदि गुणों से उसकी क्षमता की परीक्षा नहीं की जाती, यहां तो प्रत्येक मनुष्य का आत्म-साधन, आत्मज्ञान ही देखा जाता है। किसी मनुष्य के विषय में विना उसके आन्तरिक भावों को जाने हुए केवल उसके बाह्य आडम्बर को देख कर ही किसी प्रकार का मत प्रकाश करना बड़ी भारी भूल है। यदि कोई मनुष्य अन्तःकरण का अच्छा है तभी वह पूज्य हो सकता है। मनुष्य को वैसे ही महात्माओं की जीवनघटनाओं को रुचि एवं ध्यानपूर्वक पढ़ना चाहिये, जिनका जीवन प्रकाश में चाहे वैसा रुचिकर न हो, परन्तु वास्तव में जिनकी साधुता उनके उदार हृदय, प्रफुल्ल वदन, कृपापूर्ण दृष्टि और शान्तचित्त से भलीभांति व्यञ्जित होती हो। ऐसे महात्माओं का यदि जीवनवृत्तान्त लिखा

जाय तो उसमें उनके शुद्ध विचारों और शिक्षाओं के रूप में उनके आभ्यन्तारिक अनुभवों का समुच्चय और उनकी अनिर्वचनीय मुस्कराहटों और दृष्टियों का सुखप्रद वर्णन होगा। स्वामी राम का जीवनचरित भी अभ्यन्तर से प्रारम्भ होता है। उसमें उनके चित्त के क्रमशः विकास और आत्मज्ञान द्वारा स्थूल जगत् से बाहर जाकर आत्मसाक्षात्कार तक का वर्णन होना स्वाभाविक है।

स्वामी राम का जीवन सार्वत्रिक शान्ति और प्रेम से भरा हुआ, प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण, एक मीठा राग है। यह उन महत्त्वपूर्ण उपनिषदों के उपदेश से सामञ्जस्य रखता है। यह राग बिल्कुल अनूठा और अश्रुतपूर्व नहीं है। उपनिषदों के उसी प्राचीन उपदेश को स्वामी राम ने अपनी मनोहर ध्वनि द्वारा संसार में प्रचारित किया। स्वामी राम ने अपने अन्तःकरण से बड़े ऊंचे शब्दों में मनुष्यों को उपदेश दिया है कि वे विभिन्नता को त्याग दें, स्वार्थ को छोड़ कर परमार्थचिन्तन में लगें, और अनेकत्व को दूर हटा कर एकत्व को भजें। उन्होंने मनुष्यों को घृणा से प्रेम और युद्ध से शान्ति करने का पाठ पढ़ाया। उनसे सर्वसाधारण की ओर सहानुभूति और उदारता की धारा बहती थी। वह आभ्यन्तरिक मनुष्य जीवन और अन्तरात्माओं के कवि थे। उनके लिये सब मनुष्य और सब पदार्थ एकसमान ईश्वरीय थे। 'तत्त्वमसि' और 'एकमेवाद्वितीयं' इन दो मन्त्रों रूपी परों के बल से स्वामी राम रूपी दिव्य हंस अपने जीवन काल के प्रत्येक क्षण में आकाश की ओर यहां तक ऊपर चढ़ता गया कि वह अनन्त से जा मिला।

स्वामी राम का जन्म सन् १९७३ ई० में पञ्जाब के

गुजरानवाला नामी प्रान्त के मुरालीवाला नामक एक छोटे ग्राम में हुआ था। उन्होंने एक निर्धन ब्राह्मणवंश में जन्म पाया। कहा जाता है कि मुरालीवाला ग्राम के गोस्वामी ब्राह्मण रामायणप्रणेता प्रसिद्ध गोस्वामी तुलसीदास जी ही के वंशज हैं। इनके पिता गोस्वामी हीरानन्द धर्मोपदेशार्थ पेशावर और स्वात तक जाते थे और यही इनकी जीविका का आधार था। वह साम्प्रत पश्चिमोत्तर सीमा प्रदेश के पुरोहित भी थे। गोस्वामी हीरानन्द को अपने यजमानों के यहां कभी २ जाना पड़ता था। स्वामी राम के जन्म के कुछ ही दिवस पश्चात् उनकी माता का शरीरान्त होगया और वह गौ का दूध पिलाकर पाले गये। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि पञ्जाब के निवासी होने पर भी स्वामी जी का प्रधान भोज्य दूध भात था। वह दूध बहुत पसन्द करते थे और एक बार में पांच सेर तक दूध पी सकते थे। इस प्रकार स्वामी राम का जन्म एक दरिद्र ब्राह्मण कुटुम्ब में हुआ। पांच वर्ष के होने पर वह पढ़ने को बिठाये गये। उनका बचपन और कुमारावस्था कठिन परिश्रम के साथ पठन पाठन में बीते। ज्यों ज्यों वह ऊपर की कक्षाओं में पहुंचते गये उनके पिता उनका व्यय न संभाल सके और स्वामी राम की छात्रावस्था बड़ी दरिद्रता में बीती। बाल्यावस्था में स्वामी राम मोटे कपड़े की बनी हुई एक क़मीच, पायजामा और एक छोटी पगड़ी के सिवा और कुछ न पहनते थे और इस पोशाक में कठिनता से तीन रुपये लगते थे। उनके सहपाठी कहते हैं कि कालेज में पढ़ने के समय में वे एक समय न खाकर उस धन से तेल मोल लेकर रात को देर तक पढ़ते थे। कभी २ उनको कई दिन तक भोजन न मिलता था, परन्तु तब भी वे सदा के समान प्रसन्नचित्त

होकर कालेज जाया करते और अपने पठन पाठन में कमी न करते थे।

उनका मुखारविन्द आर्यों की मुखाकृति का एक विशिष्ट नमूना था। उनकी काली २ आंखों के ऊपर टेढ़ी भौंहें उनकी आत्मा की गूढ़ता और प्रेम का परिचय देती थीं। जब कभी वह गम्भीर विचारों में निमग्न होते थे उनका नीचे का ओठ उनके ऊपरी ओठ पर चढ़ जाता था और उनकी अद्भुत कार्यशक्ति उनके चेहरे से टपकने लगती थी। जब वह कालेज में विद्यार्थी थे तो उनको देखकर उनके महत्वपूर्ण भावी जीवन का पता नहीं लगता था, तथापि जो कोई उनको देखता था, उनके देवतुल्य स्वभाव और निर्मल निर्दोष जीवनको देखकर चकित हो जाता था। वह एक विनम्र बालिका के समान लज्जायुक्त थे। उनका जीवन तो प्रेममय था ही, उनकी शुद्धता भी उनके छोटे दुबले गौरवर्ण के शरीर से भलीभांति प्रकट होती थी। इसी साधारण स्थिति के मनुष्य को एक प्रसिद्ध उच्चादर्श होना लिखा था और ब्राह्मण कुमार अपने इस पवित्र हृद्गतभाव को व्यञ्जित न होने देता था। अपने अश्रुपूर्ण नेत्रों, शिष्यवत् विनम्र हृदय, बालिका की सी शान्ति और विजेता की सी कार्यशक्ति लेकर यह देवतुल्य विद्यार्थी विद्यारूपी मन्दिर में एक सैनिक की भांति निरन्तर पुरुषार्थ करता था। वह अपने सहपाठियों से हर विषय में सदा आगे रहता था। उसकी विद्या अथाह थी। उसके बाद सन्यासी होने पर साहित्य का और तत्वविचार विषयक उनको बहुत अधिक ज्ञान था और जान पड़ता था कि समस्त मानुषिक विचारों का उन्हें पूरा २ बोध है।

प्रायः २० वर्ष की अवस्था में उन्हों ने गणित में एम. ए.

पास किया। तदनन्तर चार वर्ष तक वह कभी प्रोफ़ेसर और कभी लेक्चरर होकर काम करते रहे। सन् १८९९ ई० के अंत में अर्थात् लाहौर से जंगलों में जाने के एक वर्ष बाद वह संन्यस्त हो गये। इस प्रकार केवल २६ वर्ष की आयु में उनका विद्याभण्डार पूरित हो चुका था। वह अपने प्रत्येक पल का यथोचित उपयोग करते थे। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को बड़ी ख्याति के साथ पास करने, उनमें सर्वोच्चस्थान प्राप्त करने और छात्र वृत्तिपाने के अतिरिक्त वह हाफिज़,मौलानारूम,मगरबी उमर ख़याम और फ़ारस के दूसरे सुफ़ी विद्वानों के लेखों और कविताओं से भली भांति परिचित हो चुके थे। उन्होंने पूर्वीय और पाश्चात्य तत्व-विचारविषयक सम्पूर्ण साहित्य का मथन कर डाला था। कालेज में ही के दिनों वे उपनिषदों को कई वार पढ़ चुके थे। वह हिन्दी, ऊर्दू और पंजाबी कवियों के वाक्यगौरव को पूर्णतया समझने में समर्थ थे।

उनकी परिस्थिति की प्रतिकूलता और अत्यधिक पठन-पाठन से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया था। जिस वर्ष वे एम. ए. में उत्तीर्ण हुए थे, लोगों को आश्चर्य होता था कि उनके से अस्थिचर्मविशेष शरीर में प्राण क्योंकर विद्यमान थे। उनकी हड्डियों में मांस शेष न रह गया था। उनका शिर एक पतली अस्थिमात्रावशेष सारस की सी गरदन पर रक्खा था। उनका शब्द कड़ा पड़ गया था और वह ठीक २ बोल भी न सकते थे। उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया था अतएव उन्होंने अपने शरीर को पुष्ट बनाने का विचार किया। शारीरिक व्यायाम और दुग्ध के सेवन से उनका स्वास्थ्य सुधर गया। अब उनको शारीरिक व्यायाम के

नवीन आयोजन सोचने में प्रसन्नता होने लगी। तभी से शारीरिक व्यायाम उनकी दिनचर्या का एक अंश हो गया। शरीरान्त होने के कुछ ही मिनट पूर्व वह व्यायाम करते देखे गये थे। इस प्रकार अपने दुर्वल पतले शरीर को उन्होंने बलिष्ठ एवं फुर्तीला बना लिया। वह बहुत दूर तक और बहुत जल्दी चल सकते थे। सन्यासी होने पर वह हिमालय पर्वत पर ४० मील से भी अधिक प्रतिदिन चला करते थे। अमरीका में उन्होंने एक ४० मील की दौड़ में सर्वश्रेष्ठ होकर ख्याति पाई थी और इस दौड़ में वे केवल विनोदार्थ अमरीकन सिपाहियों के साथ दौड़ कर अपने पीछे वाले सैनिकों से दो घण्टा पूर्व ही पूरे ४० मील दौड़ चुके थे। एकबार वह सैनफ्रैनसिस्को की सड़कों में इतने वेग से जा रहे थे कि एक अमरीकानिवासी ने उनसे कहा कि आप तो ऐसा चलते हैं कि मानों यह पृथ्वी आप ही की है। स्वामी राम ने उत्तर में मुस्कराकर कहा "हां" और चल दिये। एक साधारण वस्त्र और कम्बल लेकर वे गंगोत्री, यम्नोत्री और बदरिनाथ में पर्यटन कर आये थे। वह गंगोत्री से यम्नोत्री तक हिमसमूहों में होकर गये थे। वह हिमाच्छादित गुफाओं और भयानक बनों में एकाकी ही सोते थे। वह पहाड़ी लोग जिनसे कि इस लेखक से भेंट और बातचीत हो चुकी है, स्वामी जी को 'देव' मानते थे और उनका विश्वास था कि वही उनके पशुओं को बेग से बहती हुई पार्वत्य नदी के उस पार से इस पार उनके गांव की ओर निकाल लाते थे। कभी २ अर्धरात्रि को अपना आसन छोड़ कर वे भयावने जंगलों में मृत्यु और भय के मुख में घूमा करते थे। जिन्होंने उनको एक क्षुधापीड़ित दुर्बल पतले युवक की अवस्था में देखा था, वे कदाचित् उनके उस

उज्ज्वल मुखारविन्द को, इस जंगली, निर्भय, धृष्ट, सबल और तेजोमय मनुष्य को देखकर न पहँचान सकते थे। उनका चेहरा अब भर गया था, उसमें एक विशिष्ट तेज आ गया था और ईश्वरीय आनन्द से उनके नेत्र अर्धनिमीलित-से हो गये थे। इस शारीरिक एवं आत्मिक शक्ति का निदर्शन स्वरूप स्वामी राम ने अपने जीवन भर के परिश्रम अर्थात् अपने आप को ही संसार के समक्ष उपस्थित किया।

स्वामी राम की आत्मीयता आवेशपूर्ण थी। वह कभी कभी महीनों तक मौन धारण कर लेते थे, मानों उनको कुछ कहना ही नहीं। वह परमानन्द में निमग्न रहते थे। कभी २ यकायक ज्वालामुखी पर्वत की नाईं उनकी हृदयाग्नि भभक उठती थी और बहुत जल्दी २ अपने विचार प्रकट करने लग जाते थे। उनके लेखों और वक्तृताओं सब में कोई न कोई हृदयग्राहक एवं शान्तिप्रद बात अवश्य होती थी। जान पड़ता है कि जहां वे समाज में कुछ अधिक दिन तक रुक जाते थे कि उनको आत्मिक अशान्ति का अनुभव होने लगता था। वह इस अशान्ति को दूर करने के लिये पर्वत के निर्जन प्रदेशों में दौड़ जाया करते थे। वहां बहते हुए जल तथा आनन्दमय आकाश को देखकर उन्हें शान्ति मिलती थी और वह वहां चट्टानों पर घाम में आँखें बन्द किये हुए घण्टों पड़े रहते थे।

स्वामी राम की आत्मीयता का एक और विशिष्ट लक्षण उनके भावों की गंभीरता थी। उनके नेत्रों से अगाध प्रेम और सत्यता की प्रबल धारायें बहती थीं। उनका प्रेम नैसर्गिक भाव था। हिन्दू और मुसलमान दोनों की उन पर एक समान प्रीति थी। भिन्न २ जातियों के मनुष्यों को स्वामी

राम में कोई न कोई अपने ही परिवार के लक्षण दिखाई देते थे। अमरीकावाले उन्हें अमरीकन कहते थे, जापान वाले जापानीय और फ़ारसवाले उन्हें फ़ारस का ही निवासी समझते थे। स्वामी राम को देखते ही मनुष्यों के हृदय में नवीन आदर्शों, नवीन शक्तियों, नवीन दृश्यों एवं नवीन भावों का प्रादुर्भाव होता था।

दूसरा महत्त्व का लक्षण जिससे वह सर्वप्रिय होगये थे उनकी विचारों की स्वतन्त्रता और प्रखर बुद्धि थी। वह जो २ उपदेश देते थे यही नहीं कि वह उन सब पर विचार कर लिया करते थे। वरन् उन सब का अपने ही जीवन में अनुभव कर चुके होते थे। वह कहा करते थे कि वे आनुभविक धर्म में विश्वास करते हैं। उनके मतानुसार जीवन का सारा रहस्य परमश्रद्धा में गुप्त है। भावपूर्ण मनुष्य के आभ्यन्तरिक धर्म का धर्म शास्त्रों से कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि तुम अपने को जीवित कहते हो तो किसी भी बात की सत्यता को स्वयं अनुभव करके ही स्वीकार किया करो। जैसे विज्ञान में किसी बात का निर्णय करने में प्रत्यक्ष परीक्षा से काम लिया जाता है उसी प्रकार धर्मविषयक किसी बात की सत्यता को धार्मिक पुस्तकों में लिखे होने ही के कारण न मान लेना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों का सत्यासत्य निर्णय करना चाहिये। प्रत्येक मनुष्य को दूसरों की सहायता लिये विना ही अपने जीवन ही के अनुभवों से ईश्वरज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जीवन स्वयं एक बहुत बड़ा ज्ञान है।

दो वर्ष के लगभग हिमालय में रहकर स्वामी राम के हृदय में उपदेश देने की प्रबल इच्छा पैदा हुई और अपने आत्मानंद

का प्रचार करने के लिये वह मैदानों में उतर आये। सन् १९०२ ई० में वह कलकत्ता से जापान के लिये जहाज पर सवार हुए। जापान में वह केवल १४ दिन ही रहे और इस समय में उनको दो वार वक्तृता देने को बुलाया गया। टोकियो के क्रिश्चियन समाचार पत्र ने इनके स्वरूप की बड़ी प्रशंसा की थी और उनको वेदान्त का एक प्रसिद्ध प्रवर्तक कहा था।

स्वामी राम से पहली ही वार भेंट होने पर टोकियो के राजकीय विश्वविद्यालय के संस्कृत और पूर्वीय तत्व विवेचन के प्रोफ़ेसर डाक्टर टाकाकुथ्सू ने इस लेखक से कहा था कि यद्यपि उन्होंने इंग्लैंड में प्रोफ़ेसर मैक्समूलर के घर पर और जर्मनी के दूसरे स्थानों में बहुत से भारतीय साधुओं और पण्डितों को देखा था, तथापि उन्होंने स्वामी राम की योग्यता का कोई मनुष्य नहीं देखा। वह तो वेदान्तसिद्धान्त के मूर्त्तस्वरूप थे। मि० किन्ज़ा हिराईको जो कि टोकियो में प्रोफ़ेसर थे और जो शिकागो की धार्मिक महा सभा में बौद्ध धर्म के प्रतिनिधि थे, स्वामी राम को देखकर भारतीय इतिहास के उस बौद्ध समय का स्मरण हो आया जिसके विषय में उन्होंने चीन और जापान के धर्मग्रन्थों में बहुत कुछ पढ़ा था। अमरीका को प्रस्थान कर जाने के पश्चात् भी यह हिराई महाशय स्वामी राम का स्मरण करके उन्हें "ब्रह्मज्ञानयुक्त राम" कहा करते थे।

सन् १९०२ ई० के नवम्बर महीने में स्वामी राम ने जापान से सैनफ़्रांसिस्को को प्रस्थान किया। वह लगभग दो वर्ष के अमरीका में रहे। इन दोनों वर्षों में उन्होंने अधिकतर एकान्त वास किया। वहां पर वे बिल्कुल साधारण रीति से

काल व्यतीत करते थे और प्रायः जङ्गलों से स्वयं इन्धन ले आते थे। कैलीफ़ोर्नियाके निवासियों को उनकी आत्मश्लाघा के प्रति उदासीनता, और फिर जब उन्होंने आत्म प्रशंसा के सैंकड़ों समाचार पत्रों के कतरनों को सैक्रेमेन्टो नदी में फेंक दिया,तब यह कार्य देखकर बड़ाही आश्चर्य हुआ। उन्होंने अमरीका निवासियों के हृदयों पर चिरस्थायी प्रभाव डाला परन्तु उनके अमरीका में किये हुये अनेक कार्यों का वर्णन यहां होना असम्भव है।

भारतवर्ष को फिरते वार वे मिस्रदेश में गये और वहां की एक बहुत बड़ी मसजिद में मुसलमान जनता के सामने फ़ारसी में वक्तृता दी। जब वह सन् १९०५ ई० में भारत-वर्ष को लौट आये तो वह अपने साथ दो विचार और लायेः— (१) जीवन के प्रत्येक कार्य और विभाग में संगठन से कार्य करने की आवश्यकता (२) और संघबल से कार्य करने की आवश्यकता। इन्हीं दो विषयों को लेकर स्वामी राम ने संयुक्त प्रदेश के कई स्थानों में बहुत सी वक्तृतायें दी थीं। एक दिन जब कि वह टिहरी गढ़वाल के पास भिलंगा गंगा में स्नान कर रहे थे. अक्तूबर सन् १९०६ ई० में अकस्मात् डूब गये। गंगा जी ने एक महात्मा का तैंतीस वर्ष की ही आयु में अन्त कर दिया। वह एक पुस्तक 'वैदिक साहित्य की महत्ता' और दूसरी 'मानसिक गतिशास्त्र' पर लिखना चाहते थे। यह दोनों अब भी उनकी आत्मा में विद्यमान होंगी, दूसरी तो तीन वर्षों से उनकी दृष्टि के सामने थी।

(अंग्रेजी से अनुवादित)



श्री स्वामी रामतीर्थ.



अमेरिका १९०३



स्वामी रामतीर्थ।



वास्तविक आत्मा।

ता० ७ जनवरी १९०२ को अमेरिका के सैन फ्रांसिस्को के गोल्डेन गेट हाल में दिया हुआ व्याख्यान।



भद्रपुरुषों और महिलाओं के रूप में सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर!

एक जर्मन कथा के अनुसार एक मनुष्य ने अपनी प्रतिच्छाया खो दी थी। यह बड़ी ही विचित्र बात है। एक मनुष्य ने अपनी छाया खो दी और उसके लिये उसे हानि उठानी पड़ी। उसके सब मित्रों ने उसे तज दिया। सम्पूर्ण सम्पत्ति ने उसे छोड़ दिया और वह बड़ी विपत्ति में पड़ गया। छाया खोने के बदले जिस मनुष्य ने अपना सारांश

खो दिया हो उसके लिये आप क्या विचार करेंगे ? जो मनुष्य केवल अपनी छाया खो बैठा है उसके उद्धार की आशा हो सकती है, किन्तु जो अपना वास्तविक सारांश शरीर खो चुका है उसके लिये कौनसी आशा हो सकती है ?

इस संसार में अधिकांश मनुष्यों की यही गति है। अधिकांश मनुष्यों ने अपनी छाया ही नहीं, परन्तु अपना मुख्यांश, अपनी वास्तविकता खो दी है। अचम्भों का अचम्भा !! शरीर छाया मात्र है, वास्तविकता है वास्तविक स्वयं, वास्तविक आत्मा। हरेक मनुष्य हम से अपनी छाया की चर्चा करेगा, हरेक पुरुष अपने शरीर के सम्बन्ध की प्रत्येक और तुच्छ से तुच्छ बात बतावेगा किन्तु अपने वास्तविक स्वयं, वास्तविक ईश्वरांश, वास्तविक आत्मा सम्बन्धी जो सो तथा हरेक बात हमें बताने वाले कितने थोड़े आदमी हैं। तुम कौन हो ? यदि तुमने अपनी आत्मा ही खो दी तो सारे संसार की प्राप्ति से भी क्या लाभ ? लोग सम्पूर्ण संसार के पाने की चेष्टा कर रहे हैं परन्तु वे जीवात्मा से, आत्मा से रहित हो रहे हैं। खोगया, खोगया, खोगया। क्या खो गया ? घोड़ा या घोड़सवार ? घोड़सवार खो गया है। शरीर घोड़े के सदृश है। और आत्मा, सच्चा स्वयं, जीवात्मा घोड़सवार के तुल्य है। घोड़ा तो है, घोड़सवार खो गया। हरेक मनुष्य घोड़े के विषय में हम से जो सो और सब कुछ कह सकता है, परन्तु हम सवार, घोड़सवार, घोड़े के मालिक के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहते हैं। इस समय हमारा विचार यह जानने का है कि, सवार, घोड़सवार या आत्मा क्या वस्तु है। यह गम्भीर विषय है। यह वह विषय है जिसके सम्बन्ध में संसार के तत्ववेत्ता अपने दिमाग को छानते रहे हैं, जिस पर भरसक

प्रत्येक ने और सब ने प्रयत्न किया है। यह गहरा विषय है, और इस घंटे भर या कुछ कम ज़्यादा समय में इस विषय पर उचित विचार आप नहीं कर सकते। फिर भी एक कथा या उदाहरण के द्वारा हम इसे यथासम्भव सरल बनाने का उद्योग करेंगे।

एक बार यह विषय १५ या १६ वर्ष के एक लड़के को समझाया गया था और थोड़े ही समय में उसने पूरी तरह से समझ लिया था। यदि वह १५ या १६ वर्ष का लड़का समझ गया था तो तुम सब और तुम में से हरेक भलीभांति विषय को समझ लेगा, यदि एकाग्र होकर सुनोगे, पूरा ध्यान दोगे। उस लड़के को समझाने में जिस ढंग से काम लिया गया था आज भी उसी का सहारा लिया जायगा।

एक बार एक भारतीय राजा का पुत्र राम के पास पहाड़ पर आया, और यह प्रश्न किया, "स्वामीजी स्वामीजी ईश्वर क्या है?" "यह जटिल प्रश्न है, बड़ा कठिन सवाल है। सकल धर्म और अध्यात्म शास्त्र इसी एक विषय के अनुसन्धान में रत हैं और तुम ज़रा सी देर में इसे पूरी तरह जान लेना चाहते हो"। उसने कहा, "हां स्वामीजी, हां, महाराज। किससे मैं यह समझने जाऊँ। मुझे यह समझा दीजिये"। लड़के से प्रश्न किया गया, "प्यारे राजकुमार, तुम जानना चाहते हो, ईश्वर क्या वस्तु है, तुम ईश्वर से परिचित होना चाहते हो। परन्तु क्या तुम यह नियम नहीं जानते कि किसी महापुरुष से जब कोई मनुष्य भेंट करने की इच्छा करता है तो पहिले उसे अपना परिचयपत्र (कार्ड) भेजना पड़ता है, अपना नाम-धाम प्रधान को भेजना पड़ता है? तुम ईश्वर से मिलना चाहते हो। उचित होगा कि अपना परिचय-पत्र ईश्वर को

भेजो, अपनी हुलिया ईश्वर को वतलाओ। अपना परिचय-पत्र उसे दो। मैं साक्षात् ईश्वर के हाथ में उसे रख दूँगा, और ईश्वर तुम्हारे पास आ जायगा, तथा ईश्वर क्या है, तुम देख लोगे"। लड़के ने कहा, "यह बहुत ठीक है, उचित बात है। मैं कौन हूं, आप को अभी जताता हूं। उत्तर भारत में हिमालय पर रहनेवाले अमुक राजा का मैं पुत्र हूँ। यह मेरा नाम है"। एक पर्चे पर उसने ये नाम-धाम लिख दिया। राम ने पर्चा ले लिया और पढ़ा। यह तुरन्त ईश्वर के हाथ में न रखा। जाकर उसी राजकुमार को लौटा दिया गया। उससे कहा गया, "अरे राजकुमार, तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो। तुम उस निरक्षर, मूर्ख आदमी के समान हो, जो तुम्हारे पिता, राजा से मिलना चाहता है और अपना नाम तक नहीं लिख सकता। क्या तुम्हारा पिता. राजा, उससे मिलेगा? राजकुमार, तुम अपना नाम नहीं लिख सकते। ईश्वर तुम से कैसे मिलेगा? पहले हमें ठीक २ बताओ कि तुम कौन हो और तब ईश्वर तुम्हारे पास आवेगा और खुले चित्त से तुम से भेंट करेगा।"

लड़के ने सोचा। वह विषय पर मनन करने लगा। उसने कहा, "स्वामी, स्वामी, अब मैं समझा, अब मैं समझा। मैं ने अपना ही नाम लिखने में भूल की थी। मैं ने केवल शरीर का पता आपको बताया, और काग़ज़ पर यह नहीं लिखा कि, मैं कौन हूँ।"

पास ही राजकुमार का एक अनुचर खड़ा हुआ था। अनुचर इसे नहीं समझ सका। अब राजकुमार से कहा गया कि, वे अपना अभिप्राय अनुचर को साफ २ बतावें, और कुमार ने इस अनुचर से यह प्रश्न कियाः—"महाशय अमुकामुक,

यह परिचयपत्री (कार्ड) किसकी है?" उस मनुष्य ने कहा, "मेरी"। तब अनुचर के हाथ की छड़ी लेकर कुमार ने उससे पूछा, 'ओ महाशय अमुकामुक, यह छड़ी किसकी है?" मनुष्य बोला, "मेरी"। "अच्छा, तुम्हारी यह पगड़ी किसकी है?" मनुष्य ने कहा, "मेरी"। कुमार ने कहा, "बहुत ठीक! यदि पगड़ी तुम्हारी है तो तुम्हारा और पगड़ी का एक सम्बन्ध है; पगड़ी तुम्हारा माल है, और तुम मालिक हो। तब तुम पगड़ी नहीं हो, पगड़ी तुम्हारी है"। उसने कहा, "बेशक, यह तो साफ ही है" "अच्छा, पेंसिल तुम्हारा माल है, पेंसिल तुम्हारी ही है, और तुम पेंसिल नहीं हो"। उसने कहा, "मैं पेंसिल नहीं हूँ, क्यों कि पेंसिल मेरी है, वह मेरी सम्पत्ति है, मैं स्वामी हूँ"। बहुत ठीक! तब कुमार ने उस अनुचर के कान हाथ से पकड़ कर अनुचर से पूछा, "ये कान किसके हैं?" और अनुचर ने कहा, "मेरे"। कुमार ने कहा, "बहुत ठीक। कान तुम्हारी वस्तु हैं, कान तुम्हारे हैं, परिणाम यह हुआ कि तुम कान नहीं हो। बहुत ठीक। नाक तुम्हारी है, नाक तुम्हारी है, इस लिये तुम नाक नहीं हो। इसी तरह, यह शरीर किसका है? (अनुचर के शरीर की ओर संकेत करते हुए)"। अनुचर ने कहा, "शरीर मेरा है, यह शरीर मेरा है"। "अनुचर जी, यदि देह तुम्हारी है तो तुम देह नहीं हो; तुम देह नहीं हो सकते, क्यों कि तुम कहते हो, कि देह तुम्हारी है। तुम देह नहीं हो सकते। मेरा शरीर, मेरे कान, मेरा शिर, मेरा हाथ यही बयान सिद्ध करता है कि तुम कोई दूसरी वस्तु हो और हाथ, कान, नेत्र इत्यादि के सहित शरीर कोई दूसरी ही वस्तु है। यह तुम्हारा माल है, तुम मालिक हो, तुम स्वामी हो, शरीर तुम्हारी पोशाक के तुल्य है, और तुम मालिक हो। शरीर तुम्हारे घोड़े के

समान है और तुम सवार हो। तो फिर तुम क्या हो?" अनुचर इतनी दूर तक समझ गया और कुमार के इस कथन से सहमत हुआ कि अपना पता बताने के अभिप्राय से जब उन्हों (कुमार) ने काग़ज़ पर अपने शरीर का पता लिख दिया था तब वे गलती पर थे। "तुम न शरीर हो, न कान हो, न नाक हो, न नेत्र हो, यह सब कुछ भी नहीं हो। तब फिर तुम क्या हो?" अब कुमार विचारने लगे, और बोलेः— "ठीक, ठीक, मैं मन हूं, मैं मन हूँ, मैं अवश्य मन हूं"। अब उस कुमार से पूछा गया, "क्या वास्तव में ऐसा ही है"।

अब, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि तुम्हारे शरीर में कितनी हड्डियां हैं? क्या बता सकते हो कि आज सवेरे तुमने जो भोजन किया था वह तुम्हारे शरीर में कहां पर रक्खा है? कुमार कोई उत्तर नहीं देसका और उसके मुँह से ये शब्द निकल पड़े, "जी, मेरी बुद्धि वहां तक नहीं पहुँचती। मैं ने यह नहीं पढ़ा है। मैं ने शारीरक या प्राणिविद्या नहीं पढ़ी है। मेरी बुद्धि इसे नहीं समझ सकती, मेरा मस्तिष्क इसकी धारणा नहीं कर सकता"।

अब कुमार से पूछा गया, "प्यारे कुमार, ऐ प्रिय बालक, तुम कहते हो मेरा मन इसे नहीं धारण कर सकता, मेरी बुद्धि वहां तक नहीं पहुँचती, तुम्हारा मस्तिष्क इसे नहीं समझ सकता। ये बातें कह कर तुम सकारते या कबूलते हो कि मस्तिष्क तुम्हारा है, मन तुम्हारा है, बुद्धि तुम्हारी है। अच्छा, यदि बुद्धि तुम्हारी है तो तुम बुद्धि नहीं हो। यदि मन तुम्हारा है तो तुम मन नहीं हो। यदि दिमाग़ तुम्हारा है तो तुम दिमाग़ नहीं हो। तुम्हारे इन्हीं शब्दों से प्रगट होता है कि तुम बुद्धि के प्रभु हो, दिमाग़ के मालिक हो, और मन के

शासक हो। तुम मन, बुद्धि या दिमाग नहीं हो। तुम क्या हो? कृपा करके विचारो, विचारो। और सावधानी से हमें ठीक २ बताओ कि तुम क्या हो। तब ईश्वर ठीक तुम्हारे पास लाया जायगा, तुम ईश्वर को देखोगे, तुम सीधे ईश्वर के सामने पहुँचा दिये जाओगे। दया करके हमें बताओ कि तुम कौन हो"।

लड़का सोचने लगा, विचारता रहा, विचारता रहा परन्तु और आगे न जासका। उसने कहा, मेरा मन, मेरी बुद्धि और आगे नहीं जा सकती"।

ओः, ये शब्द कैसे सच्चे हैं। सचमुच मन या बुद्धि अन्तरस्थ सच्चे ईश्वर या देवत्व तक नहीं पहुँच सकती। सच्ची आत्मा, सच्चा ईश्वर शब्दों और मनों के परे है।

लड़के से कहा गया कि अब तक तुम्हारी बुद्धि जहां तक पहुँची है कुछ देर बैठ कर उस पर विचार करो। "मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ।" यदि ऐसा है तो इसे समझो, इसे अमल में लाओ, बोध की भाषा में, कार्य की भाषा में इसकी आवृत्तियां करो; अनुभव करो कि तुम शरीर नहीं हो। यदि इस विचार के अनुकूल अपना जीवन बनाओ, यदि सत्य के इतने ही अंश को व्यवहार में लाओ, यदि तुम शरीर और मन से ऊपर उठ जाओ तो सब चिन्ता और भय से तुम छूट जाते हो। शरीर और मन की कोटि से अपने को ऊँचा करते ही तुम्हें भय छोड़ देता है। समस्त चिन्ता दूर हो जाती है, सब रंज भाग जाता है, जब तुम सत्य के इतने ही अंश का अनुभव करते हो कि तुम शरीर और मन से परे कोई वस्तु हो।

इसके बाद बालक को यह जानने में कुछ सहायता दी

गई कि वह स्वयं क्या है, और उससे पूछा गया, "भाई राजकुमार, आज तुमने क्या किया है? क्या कृपापूर्वक हमें वताओगे कि आज सवेरे आपने कौन २ से काम किये हैं?"

वह वर्णन करने लगा, "मैं प्रातःकाल जागा, स्नान किया, और फलाना २ काम किया, भोजन किया, वहुत कुछ पढ़ा, कुछ चिट्ठियां लिखीं, कुछ मित्रों से मिलने गया, कुछ मित्रों से अपने घर पर भेंट की, और यहां स्वामी जी को दण्डवत करने आया"।

अब कुमार से प्रश्न किया गया, "वस, यही? क्या तुम ने और वहुत कुछ काम नहीं किया? केवल इतना ही? ज़रा सोचो"। उसने विचार किया, और विचार किया, तव इसी तरह के कुछ और काम वताये। "इतना ही सव कुछ नहीं है। तुम ने और हज़ारों काम किये हैं। तुमने सैंकड़ों, हजारों, वल्कि लाखों और काम किये हैं। अगणित काम तुमने किये हैं, और उन्हें वताना तुम अस्वीकार करते हो। यह योग्य नहीं है। कृपया हमें वता दो तुमने जो कुछ किया हो। आज सवेरे तुमने जो कुछ किया हो हमें सव वता दो"।

ऐसी अद्भुत वात सुनकर कि, वताये हुए कामों के सिवाय और भी हज़ारों काम उसने किये हैं, कुमार चकित हुआ। "महोदय, मैंने आप से जो कुछ वताया है उसके सिवाय कुछ नहीं किया, उसके सिवाय कुछ नहीं किया"। "नहीं, तुमने करोड़ों, अरवों, संखों वातें और की हैं"। सो कैसे?

लड़के से पूछा गया, "स्वामी जी की ओर इस समय कौन देख रहा है?" उसने कहा, "मैं" "तुम यह चेहरा, यह नदी गंगा, जो हम लोगों के निकट वह रही है, देख रहे हो?"

उसने कहा, हां, बेशक "। " अच्छा,तुम नदी देखते हो और स्वामी जी का मुखमंडल देखते हो,किन्तु नेत्रों की छ नसों को कौन चला रहा है ? तुम जानते हो कि, जब हम देखते हैं, आंखों की छ नसें डोलती हैं। यह किसी दूसरे का काम नहीं हो सकता, यह कोई अतिरिक्त वस्तु नहीं हो सकती। देखने के कार्य में, अवश्य, स्वयं ही आंखों की नसों को डोलाता होगा "।

लड़के ने कहा, " ओः, अवश्य यह हमारा ही काम हो सकता है, कोई दुसरी वस्तु नहीं हो सकती "।

" अच्छा, इस समय देख कौन रहा है, इस व्याख्या को कौन सुन रहा है"? लड़के ने कहा, " मैं, मैं "। "अच्छा,यदि तुम देख रहे हो, यदि तुम यह उपदेश सुन रहे हो, तो वक्तृत्व-शक्तिवाली नसों को फड़का कौन रहा है ? तुम्हीं, तुम्हीं होंगे। दूसरा कोई नहीं। आज सबेरे भोजन किस ने किया था "? लड़के ने कहा, "मैंने, मैंने"।" अच्छा, यदि तुमने आज सबेरे भोजन किया था, और तुम्ही टट्टी जाकर उसे निकाल दोगे तो टट्टी जाकर भोजन को पचाता और एकरस कौन करता है ? वह कौन है, कृपया बताइये, हमें बताइये ? यदि तुमने भोजन खाया था और निकाल दिया था,तो उसे पचाने और एकरस करने वाले भी तुम्ही हो सकते हो, दूसरा कोई नहीं हो सकता। वे दिन गये जब किसी प्राकृतिक चमत्कार की व्याख्या के लिये बाहरी कारणों की खोज की जाती थी। यदि कोई मनुष्य गिर जाता था,उसके गिरने का कारण कोई बाहरी प्रेत बताया जाता था। विज्ञान शंका के ऐसे समाधानों को नहीं मानता । विज्ञान और तत्वशास्त्र आप से कहते हैं कि घटना का कारण स्वयं घटना में ही ढूंढ़ो "।

" तुम भोजन करते हो, टट्टी जाते हो और उसे निकाल बाहर करते हो। जब वह पच जाता है, तो तुम्हीं उसे पचाने वाले हो. कोई बाहरी शक्ति आकर उसे नहीं पचाती, वह स्वयं तुम्ही हो । पाचन का कारण भी तुम्हारे ही भीतर खोजना होगा, न कि तुम से बाहर "।

अच्छा, लड़के ने यहां तक स्वीकार किया। अब उससे प्रश्न हुआ, " प्यारे कुमार, जरा सोचो, थोड़ी देर के लिये विचार करो। सैकड़ों गतियां पाचन क्रिया के अन्दर आ जाती हैं। पाचन क्रिया में, चबाने में, मुख में चहुओं से लार निकलती है। दूसरे स्थान में दूसरी क्रिया तच्चाने की हो रही है। वहां नाड़ियों में रक्त-संचरण हो रहा है । वहां वही भोजन लोहू की नसों, हड्डियों, और बालों में बदला जा रहा है। यहां शरीर में वृद्धि की क्रिया हो रही है। ये होने वाली बहुत सी क्रियायें हैं,और शरीर के भीतर की इन सब क्रियाओं का पाचन और एकरसता की क्रिया से सम्बन्ध है।

यदि तुम भोजन करते हो, तो सांस लेने का कारण भी तुम्हीं हो, तुम्हीं अपनी नाड़ियों में रक्त के संचारक हो। तुम्हीं शरीर की वृद्धि करते हो। और अब ध्यान दो कि, कितने कार्य, कितनी क्रियायें तुम हर क्षण करते रहते हो "।

लड़का सोचने लगा और बोला, " वस्तुतः, मराजजी, मेरे शरीर में, इस शरीर में हज़ारों क्रियायें हो रही है, जिनको बुद्धि नहीं जानती, मन जिनसे बेख़बर है, और फिर भी वे हो रही हैं। और इन सब का कारण अवश्य मैं ही हो सकता हूं। इन सब का कर्त्ता मैं ही हूं और निस्सन्देह मेरा यह कहना ग़लत था कि मैंने कुछ काम किये हैं, केवल वहीं कुछ काम, जो मेरी बुद्धि के द्वारा हुए थे, और कोई

काम नहीं।

इसे और भी साफ कर देना चाहिये। तुम्हारे इस शरीर में दो प्रकार के काम हो रहे हैं। दो तरह के कार्य हो रहे हैं, एक अपनी इच्छा से, और दूसरे अनिच्छा से। स्वेच्छा से किये हुए काम वे हैं जो बुद्धि और मन के द्वारा होते हैं। उदाहरण के लिये, लिखना, पढ़ना, चलना. बातचीत करना, और पीना, ये कार्य बुद्धि और मन के द्वारा किये हुए हैं। इसके सिवाय, हज़ारों क्रियायें और कार्य, कह सकते हैं, सीधे २ भुगत रहे हैं। जिनमें मन या बुद्धि की आढ़त या माध्यम की आवश्यकता नहीं। उदाहरण के लिये, सांस लेना, नाड़ियों में रक्त का सञ्चारण, बालों का बढ़ना, इत्यादि।

लोग यह भूल, स्पष्ट भूल करते हैं कि, केवल उन्हीं कामों को अपने किये हुए मानते हैं, जो मन या बुद्धि की आढ़त के द्वारा होते हैं। अन्य सब करतूतें और कार्य, जो बुद्धि या मन की आढ़त के बिना सीधे २ हो रहे हैं, बिलकुल अस्वीकार किये जाते हैं। वे पूरी तरह से फेंक दिये जाते हैं, उनकी पूरी उपेक्षा की जाती है। और इस भूल तथा उपेक्षा से, सच्चे आप को इस तरह क़ैद करने से, अनन्त को छोटा सा दिमाग़ मान लेने से लोग अपने को दुखिया अभागा बना रहे हैं। वे कहते हैं, "ओः, ईश्वर हमारे भीतर है।" बहुत अच्छा, स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे भीतर है, ईश्वर तुम्हारे भीतर है, किन्तु वह गूदा (सार पदार्थ), जो तुम्हारे भीतर है, वह गूदा तुम स्वयं हो, न कि ऊपर का खोल। दया करके इसपर गम्भीरता से विचार कीजिये। मनन करो कि. तुम गूदा हो या छिलका, भला तुम वह हो, जो भीतर है, या तुम बाहरी छिलका हो।

कुछ लोग कहते हैं, "अजी महाशय, मैं खाता हूं और प्रकृति पचाती है; अजी महाशय, मैं देखता हूं किन्तु प्रकृति नसों को चलाती है; अजी महाशय, मैं सुनता हूं किन्तु नसों को प्रकृति लहराती है।" विचार, न्याय, सत्यता, स्वाधीनता के नाम में ज़रा विचारिये तो कि, आप वह प्रकृति हैं या केवल शरीर हैं? समझ रखिये, आप वह प्रकृति हैं। आप अनन्त ईश्वर हैं। यदि पूर्व-निश्चयों को हटाकर, सब पूर्व-धारणाओं को दूर कर, और अन्धे विश्वासों को त्याग कर आप इस बात पर मनन करें, इसका पता लगावें, इसकी परीक्षा करें, इसको छानें तो आप का भी वही विचार हो जायगा, जो प्रकृति के उस रूप का है, जिसे आप राम कहते हैं। आप देखेंगे कि, आप गूदा हैं, प्रकृति हैं, आप पूर्ण प्रकृति हैं।

आपमें से बहुतों ने इस तर्क का अभिप्राय समझ लिया होगा। किन्तु वह लड़का, भारतीय राजकुमार इसे भली भांति नहीं समझा। उसने कहा, "भला यहां तक तो मैं समझ गया कि मैं बुद्धि से परे कोई वस्तु हूं।" इसी समय कुमार के अनुचर ने प्रश्न किया, "महोदय, मुझे ज़रा अच्छी तरह समझा दीजिये, मैं अभी नहीं समझा हूं।" तब उस अनुचर से पूछा गया, "महाशय अमुक और अमुक, जब तुम सो जाते हो तब जीते रहते हो या मर जाते हो?" उसने उत्तर दिया, "जीता रहता हूं, मैं मर नहीं जाता।" "और बुद्धि का क्या हाल होता है?" उसने कहा, "मैं स्वप्न देखता रहता हूं, बुद्धि तब भी बनी रहती है।" "जब तुम गहरी नींद में सोते हो, (आप जानते हैं कि एक दशा गहरी नींद की दशा कहलाती है। उस दशा में स्वप्न भी नहीं दिखाई पड़ते), तब बुद्धि

कहां रहती है, मन कहां होता है ?"

वह सोचने लगा। "वह शून्यता में चली जाती है। वह चहां नहीं है, बुद्धि वहां नहीं है, मन वहां नहीं है, किन्तु तुम वहां हो या नहीं ?" उसने कहा, "ओः, मैं अवश्य वहां ही हूंगा, मैं मर नहीं सकता, मैं वहीं रहता हूं।" "अच्छा, अब ध्यान दो। गहरी नींद की दशा में भी जब बुद्धि नहीं रह जाती है, जहां बुद्धि मानो खूँटी या वांस पर टांगे हुए वस्त्र की तरह हो जाती है, बुद्धि उतार कर अरगनी पर टांगे हुए अंगरखे के समान है। तुम अब भी वहां हो, तुम मर नहीं जाते।" लड़के ने कहा, "बुद्धि वहां नहीं रहती, और मैं मर नहीं जाता, यह मेरी समझ में अच्छी तरह नहीं आता।"

तब लड़के से पूछा गया, "यह गहरी नींद लेकर जब तुम जागते हो, जब तुम जागते हो, तब क्या ऐसी बातें नहीं कहते ? 'आज रात को मुझे खूब नींद आई, आज मैंने स्वप्न नहीं देखे।' क्या ऐसी उक्तियां तुम्हारी नहीं होतीं ?" उसने कहा, "होती हैं"। भला, यह बात बड़ी सूक्ष्म है। तुम सब को ध्यान से सुनना होगा। गहरी नींद से जागने पर जब यह बात कही जाती है, 'मुझे ऐसी गहरी नींद आई कि मैंने स्वप्न नहीं देखे, मैंने नदियां, पहाड़ नहीं देखे, उस अवस्था में न कोई पिता था, न माता थी, न घर था, न कुटुम्ब, ऐसी कोई वस्तु नहीं थी। सब वस्तुयें मुर्दा और लुप्त थीं। वहां कुछ नहीं, कुछ नहीं। कुछ वहां नहीं था।" यह बयान उस आदमी का सा बयान है जिसने एक जगह का ऊजड़पन देखा और कहा था, "रात की शून्यता में अमुक २ स्थान पर एक भी मनुष्य नहीं मौजूद था"। उस मनुष्य से यह बयान

लिखने को कहा गया था। उसने इसे कागज़ पर लिखा। विचारक ने उससे पूछा, "अच्छा, क्या यह बयान सत्य है?" उसने कहा, "जी हां"। "अच्छा, यह बयान तुम सुने हाल के अनुसार कर रहे हो, या अपने निजी ज्ञान के आधार पर। क्या तुम स्वयंदर्शी गवाह हो?" "जी महाशय, मैं स्वयंदर्शी गवाह हूं। सुना हाल इसका आधार नहीं है"। "तुम इसके स्वयंदर्शी गवाह हो कि कागज़ पर कथित स्थान में कथित समय पर कोई भी मनुष्य उपस्थित नहीं था?" उसने कहा "हां"। "तुम क्या हो? तुम मनुष्य हो या नहीं?" उसने कहा "हां, मैं एक मनुष्य हूं"। "तो फिर तुम्हारे अनुसार यदि यह बयान सच है तो हमारे अनुसार यह असत्य है। तुम वहां मौजूद थे और तुम भी एक मनुष्य हो, इस लिये यह बयान अक्षरशः सत्य नहीं हो सकता कि वहां एक भी मनुष्य मौजूद नहीं था। तुम वहां मौजूद थे। तुम्हारे अनुसार यह बयान सत्य होने के लिये हमारे अनुसार इसे असत्य होना पड़ेगा, क्योंकि वहां कोई भी चीज़ न होने के लिये वहां कोई चीज़ होनी ही चाहिये, अन्ततः स्वयं तुमको स्थल पर होना ही चाहिये"।

इसी तरह गहरी नींद लेने के बाद जब तुम जागे तुमने यह बात कही, "मैंने स्वप्न में कोई चीज़ नहीं देखी"। अच्छा, हम कह सकते हैं कि तुम तो मौजूद रहे ही होंगे। वहां कोई पिता, माता, पति, स्त्री, घर, नदी, परिवार नहीं उपस्थित था, परन्तु तुम तो उपस्थित ही होंगे। तुम जो गवाही दे रहे हो वही, तुम्हारी ही गवाही सिद्ध कर रही है कि तुम सोये नहीं, तुम्हें निद्रा नहीं आई। यदि तुम्हें नींद आई होती तो हम से वहां की शून्यता की बात कौन बताता?

तुम बुद्धि से परे कोई वस्तु हो। बुद्धि सोई हुई थी, दिमाग़ एक प्रकार से आराम में था, किन्तु तुम निद्रित नहीं थे। यदि तुम सोते होते तो रक्त-नाड़ियों में रक्त का सञ्चारण कौन करता, पेट में पाचन-क्रिया कौन जारी रखता? तुम्हारे शरीर की बाढ़ को कौन जारी रखता, यदि तुम वास्तव में गहरी नींद की दशा को प्राप्त हुए होते? इस प्रकार तुम ऐसी कोई वस्तु हो जो कभी नहीं सोती। बुद्धि सोती है, परन्तु तुम नहीं। मैं शरीर, बुद्धि, और मन से परे कोई वस्तु हूं"।

अब लड़के ने कहा, "महोदय, महोदय, मैं यहां तक समझ गया और जान गया कि, मैं दैवी शक्ति हूं, मैं अनन्त शक्ति हूं, जो कभी नहीं सोती, कभी नहीं बदलती। मेरी जवानी में शरीर की दूसरी दशा थी, मेरे बचपन में बुद्धि वैसी ही नहीं थी जैसी अब है, शरीर वैसा ही नहीं था जैसा अब है। मेरे बचपन में मेरी बुद्धि, शरीर और मन अपनी आज की दशा से निपट भिन्न हालत में थे। डाक्टर लोग हमें बतलाते हैं कि सात वर्ष के बाद सम्पूर्ण क्रम बिलकुल ही बदल जाता है। प्रत्येक क्षण शरीर बदल रहा है, प्रति पल मन बदल रहा है, और बचपन में आप के जो मानसिक विचार थे, जो मानसिक भावनायें थीं, वे अब कहां हैं? बालकपन के दिनों में आप सूर्य को देवदूतों के खाने के लिये सुन्दर कचौरी समझते थे, चन्द्रमा शीशे का सुन्दर टुकड़ा था, तारे हीरों के समान बड़े थे। ये विचार कहां चले गये? तुम्हारा मन, तुम्हारी बुद्धि बिलकुल ही बदल गई है, उनमें सोलहों आने परिवर्तन हो गया है। किन्तु तुम अब भी कहते हो, "जब मैं बच्चा था, जब मैं लड़का था, जब मैं

सत्तर वर्ष का हो जाऊंगा"। तुम अब भी ऐसी बातें कहते हो, जिनसे प्रगट होता है कि तुम कोई ऐसी चीज़ हो, जो बचपन में वहां थी, जो बालकपन में वहीं थी, जो सत्तर वर्ष की अवस्था में भी वहां रहेगा। जब तुम कहते हो, "मैं सो गया, मुझे गहरी नींद आ गई, इत्यादि," जब तुम ऐसी बातें कहते हो, तब प्रगट होता है कि सत्य "मैं" तुम में है, वास्तविक आत्मा तुम में है, जो स्वप्न देश में वही रहता है, जो जागृत दशा में वहीं रहता है। तुम्हारे भीतर ऐसी कोई वस्तु है, जो तुम्हारी मूर्छावस्था में भी वहीं रहती है, जो उस समय भी वहीं रहती है जब तुम नहाते हो, जब तुम लिखते हो। कृपा करके ज़रा सोचिये, विचारिये, ध्यान में लाइये। क्या तुम ऐसी कोई वस्तु नहीं हो जो सब परिस्थितियों में वहीं रहती है, जिसकी दशा निर्विकार हैं, जो आज, कल्ह और सर्वदा एकरस है? यदि ऐसी है तो थोड़ा और विचार कीजिये, और तुरन्त तुम्हारा ईश्वर का सामना करा दिया जायगा। आप जानते हैं कि आप को वचन दिया गया था, अपने को जानो, अपना ठीक पता काग़ज़ पर लिख दो, और तुरन्त ईश्वर से तुम्हारी भेंट करा दी जायगी।

अब लड़के को, राजकुमार को यही आशा थी, क्योंकि वह अपने को जान गया था, उसे पता लग गया था कि, वह कोई निर्विकार वस्तु है, कोई चीज़ निरन्तर है, कोई ऐसी वस्तु है जो कभी नहीं सोती। अब उसने ईश्वर को जानना चाहा। कुमार से कहा गया, "भाई, लखो, यहां पर ये पेड़ बढ़ रहे हैं। इस पेड़ को जो शक्ति बढ़ा रही है क्या वह उससे भिन्न है जो उस वृक्ष को बढ़ा रहा है?" उसने कहा, "नहीं, नहीं; निश्चय एक ही शक्ति है"। "अच्छा जो

शक्ति इन सब पेड़ों को बढ़ा रही है वह क्या उस शक्ति से भिन्न है जो पशुओं के शरीरों को बढ़ाती है ?" उसने कहा, "नहीं, नहीं, भिन्नता नहीं हो सकती, एक ही शक्ति है"। "अब, क्या वह बल, वह शक्ति जो तारों को चला रही है उस शक्ति से भिन्न है जो नदियों को बहा रही है ?" उसने कहा, "उसमें भिन्नता नहीं हो सकती, एक ही शक्ति होना चाहिये"। अच्छा, जो शक्ति इन वृक्षों को बढ़ा रही है उस शक्ति से भिन्न नहीं हो सकती जो तुम्हारे शरीर या केशों को बढ़ाती है। प्रकृति की वही सर्वव्यापी शक्ति, जो तारों को चमकाती है, तुम्हारी आंखो को चमकाती या झपकाती है, वही शक्ति, जो उस शरीर के बालों का कारण है, जिसे तुम मेरा कहते हो, वही शक्ति प्रत्येक और सब की नाड़ियों में रक्त दौड़ाती है। सचमुच, तब तुम और क्या हो ? क्या तुम वही शक्ति नहीं हो, जो तुम्हारे बालों को बढ़ाती है, जो तुम्हारे रक्त को तुम्हारी नाड़ियों में बहाती है, जो तुम्हारे भोजन को पचाती है ? क्या तुम वह शक्ति नहीं हो? सचमुच तुम वही शक्ति हो, जो बुद्धि और मन के परे है। यदि ऐसा है तो तुम वही शक्ति हो, जो सम्पूर्ण विश्व की शक्ति का शासन कर रही है। वही अज्ञेय, वही तेज, शक्ति, तत्व, जो जी चाहें कहलो, वही दैवी शक्ति, वही सम्पूर्ण, जो सर्वत्र विद्यमान है, वही, वही तुम हो।

बालक चकित होकर बोला, "वास्तव में, वास्तव में मैंने ईश्वर को जानना चाहा था। मैंने सवाल किया था कि, ईश्वर क्या है, और मुझे पता लगता है कि मैं आप स्वयं, मेरी सच्ची आत्मा ईश्वर हूं। मैं क्या पूछ रहा था, मैंने क्या पूछा था, कैसा बेहूदा प्रश्न मैंने किया था। मुझे अपनेही

को जानना था, ईश्वर को जानने के लिए मुझे अपने ही को जानना था। इस तरह ईश्वर तो ज्ञात ही था"।

इस सत्य का अनुभव करने के मार्ग में एक यही कठिनाई है कि, लोग बच्चों का स्वांग (अभिनय) करते हैं। आप जानते हैं, बच्चे कभी २ किसी विशेष प्रकार की थाली पर मुग्ध होजाते हैं, और तब तक कोई पदार्थ भोजन करना नहीं चाहते हैं जब तक उनकी प्रिय थालियों में वह चीज नहीं परोसी जाती। वे कहेंगे, "मैं अपनी थाली में खाऊंगा, मैं अपनी रकाबी में खाऊंगा, दूसरी किसी थाली में मैं कोई वस्तु न ग्रहण करूँगा"। ए बच्चो! देखो, केवल यही कोई विशेष रकाबी तुम्हारी नहीं है, घर की सब तश्तरियां तुम्हारी ही हैं, सब सोनहली थालियां तुम्हारी हैं। यह एक भ्रम है। यदि इस संसार में लोग अपने को जानें तो वे सच्चे आपको सर्वशक्तिमान ईश्वर, अनन्त शक्ति पावेंगे। किन्तु वे तो इस विशेष थाली, इस शिर, दिमाग पर लट्टू हो गये हैं। मस्तिष्क के द्वारा जो कुछ होता है केवल वही मेरी करनी है। मन और बुद्धि के द्वारा जो कुछ होता है वह तो मेरा है और शेष सब मैं नहीं अपना सकता, बाकी सब मैं अस्वीकार करता हूं। मैं केवल वही ग्रहण करूंगा, जो इस विशेष थाली में मुझे परसा जायगा। यही स्वार्थपरता है। वे सब कुछ इसी थाली के द्वारा कराना चाहते हैं। और इस थाली की कीर्ति के लिए वे हरेक चीज़ इसी छोटी सी थाली के, जिसे वे मुख्यतः अपने को बताते हैं, जिससे उन्होंने अपनी एकता मान ली है, आस पास जमा करना चाहते हैं। सम्पूर्ण स्वार्थपरता, समस्त चिन्ता और विपत्ति का यही कारण है। इस मिथ्या विचार से पीछा छुटाओ. अपने सच्चे आपको सर्व अनुभव

करो, इस स्वार्थमय अहम्-भाव से ऊपर उठो, इसी समय तुम आनन्द पाओगे, सम्पूर्ण विश्व से तुम्हारी एकता हो जायगी। यह उसी ढंग की भूल है जैसी राजकुमार ने की थी। कुमार से फँसानेवाला सवाल किया गया था, तुम्हारा स्थान कहां है? और उसने राजधानी बताई थी। "वहां मेरा स्थान है"। ऐ लड़के, राज्य की राजधानी ही तेरा एक मात्र स्थान नहीं है। सम्पूर्ण राज्य, समग्र देश तुम्हारा है। तुम उस प्रधान नगर में, राज्य की राजधानी में रहते हो, किन्तु वह राजधानी ही तुम्हारा एक मात्र स्थान नहीं है, समग्र राज्य तुम्हारा है। यह सुन्दर भूभाग, ये सुहावने स्थल, यह महान् (हिमालय का) पहाड़ी दृश्य तुम्हारे ही हैं, न कि केवल वह विशेष छोटा नगर।

लोगों से यही भूल होती है। यही बुद्धि या दिमाग़ तुम्हारे वास्तविक स्वयं, आत्मा का मुख्य नगर अथवा राजधानी कहा जा सकता है। किन्तु तुम्हें कोई अधिकार नहीं है कि इस पर तो अपना स्वत्त्व घोषित करो और अन्य सब वस्तुओं को अस्वीकार करो। मष्तिष्क रूपी यह छोटी सी राजधानी, मन या बुद्धि की यह राजधानी मात्र ही तुम्हारी नहीं है। विशाल संसार, सम्पूर्ण विश्व तुम्हारा है। सूर्य, तारे, चन्द्रमा, भूमि, ग्रह, आकाश-गंगा, ये सब तुम्हारे हैं। इसका अनुभव करो। अपना जन्म-अधिकार फिर प्राप्त करो, सब चिन्ता, सब विपत्ति दूर हो जायगी।

लोग स्वाधीनता की चर्चा करते हैं। लोग मुक्ति की चर्चा करते हैं। यदि तुम स्वाधीन होना चाहते हो, यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो तो तुम्हें जानना चाहिये कि बन्धन का कारण क्या है। यह ठीक कहानी के बन्दर की सी बात है।

भारत में वन्दर बड़े विलक्षण ढंग से पकड़ा जाता है। एक सँकरे मुँह का भांड़ जमीन में रख दिया जाता है और उसमें कुछ फल या बीज और वन्दरों को रुचिकर अन्य खाद्य पदार्थ रख दिये जाते हैं। वन्दर आते हैं और भांड़ में अपने हाथ डालकर उनको फलों से भर लेते हैं। इससे मुट्ठी मोटी हो जाती है और फिर निकाले नहीं निकलती। इस तरह वन्दर पकड़ा जाता है, वह निकल नहीं सकता। अद्भुत रीति से, विचित्र उपाय से वन्दर पकड़ा जाता है। हम पूछते हैं, तुम्हें पहले कौन बांधता है। तुमने स्वयं अपने को दासता और बन्धन के अधीन किया है। यह समग्र विस्तृत संसार है, विशाल सुन्दर वन है, (और सम्पूर्ण विश्व के इस महान सुन्दर वन में एक सँकरे गले का बर्तन मिलता है। संकीर्ण गले का यह भांड़ क्या चीज़ है ? यह तुम्हारा मस्तिष्क है। यह छोटा दिमाग़ ही सँकरे मुँह का बर्तन है। इसमें कुछ फल हैं और लोगों ने इन फलों को पकड़ लिया है। दिमाग़ की आढ़त या इस बुद्धि के माध्यम द्वारा किया हुआ सब कुछ मनुष्य अपना मान लेता है। हरेक कहता है, "मैं मन हूं" हरेक मनुष्य ने कार्यतः अपने को मन मान लिया है। "मैं मन हूं, मैं बुद्धि हूं"। और संकरे मुख के बर्तनों के इन फलों को वह पीछे पकड़ता है। यही तुमको गुलाम बनाता है। यही तुमको चिन्ता, भय, प्रलोभनों, और सब तरह के क्लेशों का दास बनाता है। यही तुमको बांधता है। इस संसार में सब दुःखों का कारण यही है। यदि तुम मुक्ति चाहते हो, यदि तुम स्वाधीनता चाहते हो, तो अपने हाथ खाली करलो, पकड़ छोड़ दो। सारा जंगल तुम्हारा है, तुम हरेक वृक्ष पर फांदते फिर सकते हो और जंगल की सब गिरी, जंगल के सब फल, सब अखरोट खा सकते हो, सब तुम्हारे हैं। सम्पूर्ण संसार

तुम्हारा है। इस स्वार्थपूर्ण अज्ञानता को छोड़ भर दो, और तुम स्वतंत्र हो, अपने त्राता आप ही हो।

"जहां प्रचुरता है वहां दुर्भिक्ष डालते हो, (क्या यह न्याय है? नहीं, यह न्याय नहीं है, यह उचित नहीं है।) जहां प्रचुरता है वहां दुर्भिक्ष डालते हो, यही (स्वार्थपूर्ण अज्ञान) तेरा शत्रु है, तेरे मधुर आत्मा के प्रति इतना निष्ठुर है, ऐसा न होना चाहिये, ऐसा न करना चाहिये, तेरी अपनी ही कली के भीतर छुपकर तू संतुष्ट रहता है। तू गँवाता है, और वह भी कंजूसी से। कंजूस मत बन, लोभी मत बन" (यह सब मालमता दे देना और इस छोटी सी बुद्धि की कुछ चीजों तक तेरे को परिमित करना कंजूसी है।)

यदि सर्व से अपनी एकता का तुम अनुभव करो तो तुम देखोगे कि, तुम्हारा यह मस्तिष्क अनन्त शक्तिशाली हो जायगा। यह वह बात है जो तुम्हारा सारे संसार से पूर्ण एक स्वर कर देगी।

"ओः, अब हम नहीं ठहर सकते, ऐ आत्मा, हम भी जहाज़ पर सवार होते हैं, (यहां आत्मा शब्द का अर्थ बुद्धि है)

तू अपने अंक में मुझको भरती हुई, मैं अपने में तुझको, ऐ आत्मा! निर्भीकता से अज्ञात तटों के लिये खेने को, प्रचण्ड वायु के बीच, हर्षोन्माद की लहरों पर, निश्चिन्तता से अलापते हुए, ईश्वर का अपना गीत गाते हुए, सुखमय अन्वेषण की तानें मारते हुए, सहित हँसी और अनेक चुम्बनों के, सहर्ष हम भी पंथहीन समुद्र में डँगी हैं।

(दूसरों को क्षमा-प्रार्थना करने दो, दूसरों को पाप अनुताप और अपकर्ष के लिये रोने दो)

ऐ आत्मा, तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको। ऐ आत्मा, हम भी ईश्वर में विश्वास रखते हैं, और किसी धर्माचार्य से भी अधिक, किन्तु ईश्वर के रहस्य से खेलने का हमें साहस नहीं, ऐ आत्मा, तू मुझको आनन्द देती है, मैं तुझको।

इन समुद्रों में खेते हुए, या पहाड़ों पर, या रात में जागते हुए, जल की तरह बहते हुए विचार, काल और दिशा और मृत्यु के मौन विचार, वास्तव में मानो मुझे अनन्त प्रदेशों में हुए ले जाते हैं।

ऐ भगवन, तू, जिसकी पवन में श्वास लेता हूँ, जिस की सनसनाहट सुनता हूं, तेरी पंक्ति में विचरने को, तेरी ओर चढ़ते हुए मुझे और मेरी आत्मा के सर्वांग का मार्जन करदे, मुझे अपने से निमज्जित करदे।

हे भगवन ! तू सर्वोच्च, बेनाम, श्वास और रंग, प्रकाश का प्रकाश, विश्वों का सृष्टिकर्त्ता और उनका केन्द्र, सत्यपरायण, नेक और स्नेही का महान केन्द्र, नैतिकता और आध्यात्मिकता का स्रोत-प्रेम का मूल और भण्डार है।

ऐ मेरी चिन्ताग्रस्त आत्मा—ऐ बेबुझी प्यास, क्या, वहां नहीं राह देख रहा है? क्या वहां कहीं पर पक्का साथी सहर्ष हम लोगों की राह नहीं देख रहा है?

तू गाड़ी है (विश्व ब्रह्माण्ड की) तू (उन) सूर्यों, नक्षत्रों, मण्डलों का प्रेरक (है), जो, चक्कर काटते हुए, क्रमपूर्वक, सुरक्षित, तालमेल में, दिशा के निराकार अनन्त विस्तारों को पार करते हैं।

यदि अपने से बाहर उन श्रेष्ठ विश्वों के लिये मैं नहीं चढ़ खड़ा हो सकता, तो कैसे मैं विचार कर सकता हूँ, एक

भी सांस कैसे ले सकता हूँ,कैसे बोल सकता हूं ? ईश्वर का ध्यान होते ही. प्रकृति और उसके चमत्कारों पर, काल और दिशा तथा मृत्यु पर, मैं तेज़ी से सिकुड़ता हूँ, पर वही मैं, (जब) फिर कर तुझे पुकारता हूँ, ऐ आत्मा, जो वास्तविक मैं हूँ ।

तब देखो, तू सहज ही में ग्रहमण्डलों की मालिक बन जाती है, तू समय की संगिनी बन जाती है, संतोष से मृत्यु पर मुसक्याती है, और भरती है, ऊपर तक लबालब भर देती है दिशा के अनन्त विस्तारों को ।

नक्षत्रों या सूर्यों से अधिक कूदती हुई, ऐ आत्मा, तू आगे यात्रा करती है। मेरे और तेरे प्रेम से अधिक दूसरा कौन प्रेम, विशेष विस्तार (से वर्णन) कर सकता है ? आदर्श के कौन से स्वप्न, शुद्धि, सिद्धि, और शक्ति की कौन सी तदबीरें, दूसरों के लिये सहर्ष सर्वस्व-त्याग की, और दूसरों के लिये सब कुछ सहने की कौन सी आकांक्षायें,कौन सी इच्छायें,ऐ आत्मा, तेरी और हमारियों से बढ़ी चढ़ी हैं ?

आगे की गणना करते २, जब समय आया, सब समुद्र पार कर लिये गये, अन्तरीपों की सब दिक्कतें झिल गईं, यात्रा हो गई, जब ए आत्मा, (चारों ओर से ईश्वर से) घिरी हुई, तू सामना करती है, ईश्वर के सम्मुख होती है, तब प्राप्त लक्ष्य वैसे ही अर्पण करती है, जैसे सौहार्द और प्रेम से परिपूर्ण बड़े भाई के मिल जाने पर छोटा भाई उसकी स्नेहमयी गोद में पिघल जाता है ।

(परम प्रिय) भारत की अपेक्षा भी अधिक [दूर] का मार्ग । क्या तेरे पंख सचमुच ऐसी लम्बी उड़ानों के योग्य हैं ? ऐ आत्मा, ऐसी यात्रायें भी क्या सचमुच तू करती है ?

ऐसे जलों पर भी तू विहार करती है ? क्या तू संस्कृत और वेदों के नीचे से ध्वनि उठाती है ? तो ले, अपने बन्धन का पट्टा खारिज करवा ले। तेरे लिये मार्ग है, तट तेरे हैं, ऐ पुरानी भयंकर पहेलियों ! (तुम्हें बूझने के लिए अब रास्ता साफ है) जीते जी जो तुमको कभी न पहुंच सके, उनके कंकालों के ढंदों से ढकी हुई ऐ गलाघोटू समस्याओं ! तुम्हारी सिद्धि के लिये, तुम्हारे लिए रास्ता है।

खेते चले, बढ़े चलो, वास्तविक आपतक । इस सम्पूर्ण अन्ध विश्वास को, शरीर के इस अन्ध-विश्वास को छोड़ो। इस क्षुद्र शरीर की मोहनी से पिंड छुटाओ। तुमने अपने को इस बुद्धि या शरीर के मोह में फंसा लिया है। उससे पीछा छुटाओ, खेते चलो, नित्यता, वास्तविकता, सच्ची आत्मा की ओर बढ़े चलो। भारत से भी अधिक दूर का मार्ग लो।

भारत से भी अधिक दूर का रास्ता ! ऐ भूमि और आकाश के रहस्य ? तुम्हारे भी, ऐ समुद्र के जलो, ऐ घूमती हुई नदियों और दरियों तुम्हारे भी, ऐ वनो और खेतो तुम्हारे भी, ऐ मेरे देश के ऐ उद्यानो तुम्हारे भी, ऐ शिलाओ, भारी भारी भूधरों, ऐ आरक्त प्रातःकाल, ऐ मेघो, ऐ वृष्टि और हिमों, ऐ दिन और रात, मार्ग तुम्हारे लिए।

शरीर से ऊँचे उठो, और तुम ये सब हो जाते हो, तुम्हें इन सब के लिये रास्ता मिल जाता है। अनुभव करो कि, तुम स्वयं ये सब हो।

ऐ चन्द्र और सूर्य और तुम समस्त नक्षत्रो ! बृहस्पति और शुक्र ! मार्ग तुम को, मार्ग तुरन्त मार्ग। रक्त जल रहा है मेरी नसों में। दूर के लिये ऐ आत्मा, तुरन्त लंगर छोड़ दो ! काट दो रस्से-निकल चलो—हरेक बादबान को लगादो।

भूमि में वृक्षों की तरह क्या काफ़ी देर तक हम यहां नहीं खड़े रहे? तुच्छ पशुओं की तरह खाते और पीते क्या हम यहां काफी देर तक रेंगते नहीं रहे? क्या हमने देर तक अपने को पुस्तकों से चौंधिया और अन्धकारमय नहीं बना लिया है?

खेते चलो—केवल गहरे पानी के लिये नाव चढ़ाओ, निश्चिन्तता से ऐ आत्मा, ढूढ़ते हुए, मैं तेरे साथ, और तू मेरे साथ। क्यों कि हमारा लक्ष्य वह है जहां जाने का किसी नाविक ने अभी तक साहस नहीं किया।

अपने को और सर्वस्व को, और जहाज को हम जोखिम में डालेंगे।

ऐ मेरी वीर आत्मा! ऐ दूर, दूर खेओ! ऐ साहसी किन्तु सुरक्षित आनन्द! क्या वे सब समुद्र ईश्वर के नहीं हैं? ऐ दूर दूर खेओ!

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

धर्म-तत्व ।



(लाहौर निवासी महाशय मथुरादास पुरी ने सन १९०६ के प्रारम्भ में निम्नलिखित धर्म विषयक प्रश्न छपवा कर उत्तर पाने के लिये प्रसिद्ध धर्मानुयायी सज्जनों के पास भेजे थे। उस समय स्वामी राम का गंगातट पर निवास था। स्वामी जी ने उनके उत्तर कानपुर के 'जमाना' नामक उर्दू मासिक पत्र द्वारा दिये थे, जिसका यह हिन्दी अनुवाद है।)

प्रश्नः—

(१)—धर्म से क्या तात्पर्य है तथा उससे किस उद्देश, आवश्यकता और लाभ की आकाँक्षा है ?

(२)—धर्म का सर्वोत्तम रूप और उसको आचरण में लाने की सर्वश्रेष्ठ विधि क्या है ?

(३)—मानुषी अस्तित्त्व में वह मुख्य अंश क्या है, जिससे धर्माचरण और उसका उद्देश मुख्य सम्बन्ध रखते हैं, और वह संबंध किस दशा में कैसा है ?

(४)—धर्म के उद्देश को सफलतापूर्वक पूर्ण करने की विधि में किस किस साधन और सहायता की आवश्यकता है ?

(५) (क) क्या जाति, समय, स्थान, भोजन और संग (सहवास) का धर्माचरण पर कोई प्रभाव होता है, यदि होता है तो क्या ?

(ख) क्या केवल अंधाधुंध विश्वास (इस जीवन के पश्चात् सफलता प्राप्त होने की काल्पनिक धारणा), केवल पुस्तकीय ज्ञान, और धर्मग्रन्थों का बार बार अध्ययन और श्रवण ही धर्म के उद्देश की सिद्धि के लिये काफी होगा, अथवा किसी ऐसे आचरण (व्यवहार) की भी आवश्यकता है जिससे ऐसे संतोषप्रद लक्षण उत्पन्न हों कि उनसे धर्माचरण के परिणाम की धर्म के उद्देश के साथ तुल्यता जीतेजी (वर्तमान जीवन में) प्रमाणीभूत हो सके ? यदि किसी ऐसे आचरण (व्यवहार) की आवश्यकता है तो वह क्या है और क्या संतोषप्रद लक्षण वह उत्पन्न करता है ?

(ग) क्या धर्म के उद्देश को पूरा करने की विधि ही केवल, किसी अनुभवी धर्मनिष्ठ की सहायता विना, किसी सामान्य मनुष्य के लिये पूर्ण लाभप्रद हो सकती है?

(घ) क्या मानुषी अस्तित्त्व के संबंध में कोई प्राकृतिक कारण ऐसे हैं जो धार्मिक आचरण (जीवन) के परिणाम की उन्नति पर कोई प्रभाव रखते हों? यदि हैं तो क्या, और क्या प्रभाव रखते हैं?

(६) किसी धर्म का महत्त्व, उसका विश्वास, उसका अंगीकार करना और त्याग करना, किस विवेचना के फल पर निर्भर होना चाहिये, और उसका प्रभाव साधारणतः कब अनुभव में आने लगता है?

(७)—रचना [सृष्टि] का मूल कारण और उद्देश क्या है?

(८)—धर्म और विज्ञान, उनके व्यवहार, साधन विधि तथा उद्देशों में क्या भेद और समानता है?

उत्तरः—

(१)—'धर्म' शब्द से सब लोगों का एक ही तात्पर्य नहीं होता। देश, काल और योग्यता के अनुसार धर्म का अर्थ भी बदलता रहा है। लेखक तो धर्म के तात्पर्य से चित्त की वह बढ़ी-चढ़ी अवस्था लेता है, जिसकी बदौलत शांति, सतोगुण, उदारता, प्रेम, शक्ति और ज्ञान हमारे लिये स्वाभाविक और निज़ी हो जांय, अर्थात् हमसे स्वतः प्रकट होने लगें। दूसरे शब्दों में हमारी रहन सहन [आचार-व्यवहार], वाणी और विचार एक परिच्छिन्न शरीर और उसके दास की दृष्टि [देहाध्यास] से न रहे, वरन् [सर्व व्यापी] विश्वात्मा और जगत्प्राण की दशा हो जाय। अथवा प्रकट नामरूप और शरीर को वास्तविक मूल [ईश्वर] ही सीधा २ चारों ओर प्रकाशमान् दृष्टिगोचर होने लगे। इन अर्थों में धर्म को लिया जाय तो सारे संसार की उत्पत्ति और स्थिति

का फल (परिणाम' धर्म है।

धर्म स्वयं ही उद्देश है। समस्त सांसारिक उद्देशों का उद्देश है, और अपना आप उद्देश है, सम्पूर्ण विद्याओं का लक्ष और अन्तिम परिणाम [निष्कर्ष] है, वेद का अन्त—वेदांत है, इससे कुछ परे या ऊपर नहीं जो इसका उद्देश हो सके।

आवश्यकता धर्म की उसी प्रकार की है जैसे नदियों को आवश्यकता है समुद्र की ओर बहते रहने की, अग्नि की ज्वाला को ऊपर की ओर भड़कने की, वृक्षों और पशुओं को आहार की, सजीव प्राणियों को वायु की, आंख को प्रकाश की, रोगी को औषधि की।

लाभः—जानते हुए अथवा न जानते हुए धर्म को आचरण में लाये बिना किसी प्रकार की सफलता, उन्नति और अभ्युदय, सुख और शान्ति, स्वास्थ्य और शक्ति, विद्या और कला, कुशल और मंगल प्राप्त नहीं हो सकते।

(२)—कोई भी मनुष्य जाने या अजाने जिस दर्जे [कोटि] तक आचार विचार से धर्म की एकाग्रता और समाधि में स्थित होता है, उसी दर्जे तक वह ऋद्धि सिद्धि को पाता है, और धर्म का सर्वोत्तम रूप यह है कि मनुष्य में कर्म और ज्ञान दोनों द्वारा अहंभाव मिटकर, परमात्वभाव में इस हद (दर्जे) तक समाधि (एकाग्रता व एकता) आ जाय कि व्यक्तिगत कल्याण और कुशलता के स्थान पर देश का देश वरन् देशों के देश उसकी समाधि के प्रभाव से भाग्यवान होते जाएँ। समस्त संसार में शक्ति और आनन्द के स्रोत वह निकलें, एकता और आनन्द की लहरें जारी हो जांय, बल और प्रसन्नता की उषा उदित हो जाय॥

आचरण (व्यवहार) में लाने की सर्व श्रेष्ठ विधिः-(क)

उपनिषद् और गीता का बार बार विचार और उसका अनुष्ठान।

(ख) जिस ज्ञानी के निकट बैठने (सहवास) से आश्चर्य की दशा छा जाय उनके दर्शन और सत्संग।

(ग) दिन में कम से कम पांच वार समय निकाल कर अपने स्वरूप से अज्ञान और पाप को निर्मूल करना अर्थात् अपने आप को शरीर और शारीरिकता (देहभाव) से पृथक् देखना, अपना घोंसला, मोह वासनाओं के उजाड़ से उठाकर सत्य की वाटिका और स्वरूप के नन्दनवन में लगाना और इस प्रकार के महावाक्य में लय हो जानाः—

आफ्तावम्, आफ्तावम्, आफ्ताब,
जर्राहा दारन्द अज मन रंगोताब।

मग्ज़-ए गुफतार-हक, गुफ्तारे-मा,
चश्म-ए-अनवारे-हक, दीदारे-मा।

अर्थात् मैं सूर्य हूं, मैं सूर्य हूं, मैं सूर्य हूं। सारे परमाणु मुझ से चमक दमक पाते हैं। मेरी वाणी ईश्वर की वाणी का भण्डार है और मेरा दर्शन मात्र ईश्वरीय प्रकाश का स्रोत है।

(३)—मानुषी अस्तित्व में वह बात (तत्व) अवश्य है "जिससे धर्माचरण और उसका उद्देश मुख्य संबंध रखते हैं, लेकिन वह मुख्य तत्व मानुषी अस्तित्व का कोई अंश नहीं, वरन् मानुषी अस्तित्व उसका अंश कहा जा सकता है, और इतना भी केवल देखने मात्र है। यह मुख्य तत्व एक अगाध नदी है, जिसमें में शरीर, मन आदि, तरंगो की भांति लुढ़क पुढ़क रहे हैं। इस मुख्य तत्व को हिन्दूशास्त्र में "आत्मा" नाम दिया है।

संबन्ध किस दशा में कैसा—चित्त और मन का परिच्छिन्नता को छोड़ कर नामरूप से पार हो निजस्वरूप (आत्मा) में लीन हो जाना, सत्स्वरूप, आनन्दस्वरूप और ज्ञानस्वरूप वन जाना है।

उदाहरण—जैसे एक लहर या बुलबुला अपने परिछिन्न नाम रूप से पृथक्क होकर अपनी असलियत (मूल स्वरूप) अर्थात् जल रूप से सब लहरों और बुलबुलों में मौजें मारता है, स्वादिष्ठ है, स्वच्छ है, इत्यादि इत्यादि; या जैसे खांड का बना हुआ कुत्ता या चूहा अपने परिच्छिन्न नामरूप से रहित होकर अपना मूल स्वरूप अर्थात खांड के रूप से, खाँड के सिंह, राजा, देवता में मौजूद है और सुस्वादु है, श्वेत वर्ण है, इत्यादि इत्यादि।

स्पष्टीकरणः—(क) मन, बुद्धि, चित्त अहंकार किसी सूक्ष्म विषयपर विचार करते करते यदि एकाग्रता की उस अवस्था पर पहुँच जायँ कि क्षण भर के लिये इनका निरोध हो जाय तो विद्या और वैभव का स्वरूप वन निकलते हैं।

(ख) यदि रण क्षेत्र में सब संबंधो को तिलांजलि देकर किसी के मन, बुद्धि चित्त अपनी परिच्छिन्नता से रहित हो जायँ तो निर्भयता, वीरता, शौर्य और शक्ति की नदी वह निकलती है।

(ग) अथवा मन, बुद्धि, चित्त अहंकार जब किसी प्रकार के प्रेमपात्र और इष्ट (पदार्थ) पाकर अपरिच्छिन्नता, अभेदता और एक प्रकार से लय को प्राप्त होते हैं (जैसे एक लहर दूसरी लहर से मिलकर मिट सकती है) तो आनन्द ही आनन्द वन जाते हैं।

अतः मन, बुद्धि, चित्त,अहंकार का आत्मा में लीन होना

ही भीतरी कपाट का खुलना है, और मनका आत्माकार होना ही; क्या विद्या, का बल, क्या आनन्द, इन सबका पुञ्ज प्रकाशवत् बाहर फैलता है।

जब तक मन, बुद्धि आदि आत्माकार नहीं अर्थात् परिच्छिन्नता (नामरूप) से संयुक्त हैं, मोज की चादर मानो जल के रूप को छिपा रही है, बुलबुलों के बुरक़ (एक प्रकार का पर्देदार मुसलमान स्त्रियों के पहरने का वस्त्र जो उनको सिर से पैर तक ढांप लेता है) से नदी ढकी हुई है, भीतरी कपाट बंद है, और मनुष्य अज्ञानांधकार, भय और दुर्बलता, पाप और दुःख में फंसा हुआ है।

बाह्येन्द्रिय और अन्तः करण में जो भी शक्ति और बल है, वह सब आत्मा का ही है। इनका आत्मा में मर जाना (लय होना) ही [मनुष्य का] अमर होना है, जैसे तरंग का जल में मिटना नदी होना है। इनका आत्मा से अलग अमर होने की इच्छा करना मानो मर जाना (विनाश होना) है। बुलबुले को पानी से अलग करो फूट जायगा। प्रत्येक व्यक्ति के लिये सोना इसी कारण से जीवन का हेतु है कि गाढ़ निद्रा में बाह्येन्द्रिय और अन्तःकरण, अपरिच्छिन्नता के कारण अपने वास्तविक स्वरूप [आत्मा] में लीन और निमग्न हो जाते हैं।

(४)—साधन और सहायताः—

[क] केवल इतना आहार और वह आहार जो शीघ्र पच सके और सहज में हजम हो सके।

[ख] नींद भर सोना।

[ग] प्रातः सायं नियम पूर्वक व्यायाम करना।

[घ] यथा शक्ति ऐसी संगत से बचना जो हृदय में

रागद्वेष भर दें। यदि ज्ञानियों का सत्संग मिल सके तो वाह वाह, अन्यथा एकान्त सेवन तो सबसे अच्छा है।

[ङ] सदाचार, सद्वचन, सत्कर्म, उदारता, क्षमा, तथा लोकहित का कोई न कोई कार्य अवश्य करते रहना, बहुत बड़े सहायक हैं।

(५) [क) " जाति, समय, स्थान, आहार, और संगत का प्रभाव " अवश्य होता है। इन के अनुसार मनुष्य के चित्त की अवस्था होती है। इसी लिये समय, स्थान, आहार, और संगत बदलने से चित्त की दशा भी बदल सकती है, इसी लिये शिक्षा का प्रभाव पड़ना भी सम्भव है, और इसी लिये धर्माचरण में प्रत्येक को पूर्ण सफलता प्राप्त होना संभवित है।

जाति (असलियत) तो प्रत्येक की आत्मा (ईश्वर) है, हां जाति [Heredity = कुल, वंश] भिन्न भिन्न है, और जाति [वंश वा कुल] के प्रभाव की शक्ति वृक्षों और सामान्य पशुओं में, स्थान, समय, आहार और संगत " की शक्ति पर सदैव प्रभावशाली रहती है। किन्तु मनुष्यों के लिये संगत शिक्षा, और आहार की शक्ति प्रत्येक दशा में जाति की शक्ति पर प्रभावशाली हो सकती है।

[ख] ऐसा सन्तोषप्रद अभ्यास भी है जो जीतेजी मुक्ति [जीवन मुक्ति] दे सके, अर्थात् शोक, मोह, क्रोध और पाप से पूर्ण छुटकारा दिला सके। और वह अभ्यास मन-वचनकर्म से देह तथा देहदृष्टि को भूल कर ब्रह्मदृष्टि [सब का अपना आप—आत्मा—होकर] रहना सहना है। इससे सन्तोषप्रद लक्षणों की पूछो तो अपने आप

" दौलत गुलामे मन शुदो. इकबाल चाकरम् "

अर्थात् लक्ष्मी मेरी दासी है और ऐश्वर्य मेरा दास हो जाता है। पाप और सन्ताप का मूलोच्छेद हो जाता है।

[ग] "सामान्य मनुष्य" से अभिप्राय यदि वह व्यक्ति सूचित है, जिसके भीतर आत्मजिज्ञासा प्रेम [अभेद] की अवस्था तक नहीं भडकी, तो उसको चाहे कैसा ही "पहुँचा हुआ" अनुभवी आत्मनिष्ठ क्यों न मिले पूर्ण रूप से उद्देश कदापि सिद्ध न होगा। हजारों राजे महाराजे कृष्ण भगवान के सहवास में आये किन्तु गीता तो किसी ने नहीं सुनी। अर्जुन ने सुनी और वह भी उस समय जब राज, प्रतिष्ठा, प्राण, शिर, सम्बन्धी, धर्म और लोक परलोक को कृष्ण के चरणों पर निछावर कर बिलकुल हार कर वैराग्य स्वरूप हो रहा था।

यदि जिज्ञासा तीव्र है तो यह नितान्त असंभव है कि अनुभवी आत्मनिष्ठ या कोई अन्य आवश्यक सहायता अपने आप खिंचकर न चली आय। कोयला को आग लगी तो प्राणवायु [Oxygen] को अपनी ओर खींच लाती है, तो क्या मनुष्य के हृदय की अग्नि ही इतनी बेवस थी कि परम गुरु के मिलाप से वंचित रहे। अतः यह मानना ही असंभावित है, कि सच्चा जिज्ञासु हो और फिर आवश्यक सहायता से वंचित रहे।

[घ] मानुषी जीवन [अस्तित्व] में जितनी ठोकरें लगती हैं और कष्ट आते हैं, देखने में अर्थात् बाह्य दृष्टि से उनके कारण चाहे क्या ही न हों, यदि विचारपूर्वक देखा जाय, और उन विपत्तियों का सामना होने से पहले की अपनी भीतरी अवस्था को पक्षपात और धोके से रहित होकर सच सच और ठीक ठीक याद किया जाय तो निरंतर बिना अन्वय-

व्यतिरेक [लाश्रो-लगाओ] के मालूम होगा कि बाह्य विपत्ति तो पीछे आई, भीतरी अधःपतन पहले हो चुका था, अर्थात् हृदय कहीं सर्वभूतात्मदृष्टि को छोड़ कर परिच्छिन्न देहात्म-दृष्टि से रागद्वेष आदि में फँस गया था। यदि अन्य दृष्टि से देखें, तो यों कहिये कि हृदय सांसारिक पदार्थों के मूल स्वरूप [सत्य स्वरूप, आत्मा, ब्रह्म] की ओर ध्यान न देते हुए उनके बाह्य नामरूप में बेतरह उलझ गया था। जैसे कि स्त्री के मिथ्या रूप-सौंदर्य की चाह में डूब गया था, अथवा किसी को शत्रु समझ कर उस (नामरूपात्मक) काल्पनिक छाया को सच मान कर विष उगल रहा था, जो अपने ही आपको चढ़ा। प्यारे यार (प्रेमा) का पत्र आया, वह पत्र भी प्यारा लगने लगा। किन्तु उसमें प्रीति वस्तुतः उस कागज़ के टुकड़े के साथ नहीं थी, यार के साथ थी। इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, घर. बार, विद्या और धन आदि को सच्चे यार (आत्मा-ब्रह्म) की ओर के पत्र जान कर उस अविनाशी प्यारे के कारण यदि हमारी प्रीति उनसे हो तो निभ सकती है; नहीं तो यों ही ये चिट्ठियाँ जब प्यारी लगीं, और चिट्ठीवाले को हमने भुलाया [धर्म के नियम को तोड़ा] तो शामत [विपत्ति] आई।

इस पर वेद की आज्ञा है "जो भी कोई ब्राह्मण को ब्राह्मण की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा [अर्थात् ब्राह्मण शरीर के नामरूप संज्ञा को केवल टेलीफोन न जानेगा जिसके द्वारा आत्मा अर्थात् ईश्वर स्वयं बातें कर रहा है] तो वह मनुष्य ब्राह्मण से धोका खायगा। जो भी कोई राजा को राजा [नामरूप] की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा वह राजा से धोका खायगा। जो भी कोई धनाढ्य को धनाढ्य की दृष्टि से देखेगा और

आत्मा की दृष्टि से न देखेगा वह धनाढ्य से धोका खायगा। जो भी कोई देवता को देवता की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा वह देवता से धोका खायगा। जो भी कोई भूतों [तत्त्वों] को भौतिक दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा वह भूतों से धोका खायगा। जो भी कभी, चाहे कोई, चाहे किसी ही वस्तु को उसके नामरूप की दृष्टि से देखेगा और आत्मा की दृष्टि से न देखेगा वह उस वस्तु से धोका खायगा" *

अनन्त जीवन का यही नियम है जिसकी चोटें खा खा कर प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध होने पर भी हज़रत मोहम्मद आदि को आवश्यकता पड़ी कि ऊंची मीनारों पर से पुकार पुकार कर दुनिया को बांगें सुनायें:-"ला इलाहुल् अल्लाह" [और कुछ नहीं है सिवाय ईश्वर के]। ईसाई मत में सूली चढ़ कर फिर जी उठने से भी इसी प्रकार के सत्य में पुनर्जीवित होना अभिप्रेत है। जीवन के कड़े अनुभवों की नींव पर बुद्ध भगवान् इसी अध्यात्म-नियम को मनसा वाचा कर्मणा वनों में सुनाते फिरे कि "जो भी कोई सांसारिक वस्तुओं को सत्य मान कर उन पर भरोसा करेगा, धोका खायगा।"

अतः यह अध्यात्म-नियम वह "प्राकृतिक नियम" है जो धार्मिक आचरण के परिणाम की उन्नति पर आश्चर्यकारक प्रभाव रखता है। यदि कोई व्यक्तिविशेष इस आत्मा के साथ सम्पूर्ण रूप से एकप्राण और एकमत होगा, तो समस्त संसार उसके साथ एकप्राण और एकमत है। यदि कोई जाति दूसरी जातियों के मुकाबले में इस मुख्य तत्त्व [सत्यता] और भीतरी एकता को व्यवहार में लावेगी तो वह जाति

* देखो बृहदारण्यक उपनिषद्।

उत्कर्ष को प्राप्त होगी। और विरुद्ध इसके जो भी कोई व्यक्ति इस मुख्य तत्त्व [सत्यता] को व्यवहार रूप में भूलेगा वह व्यक्ति नष्ट होगा। और जो भी कोई जाति इस मुख्य तत्त्व को तुच्छ जानेगी वह जाति तुच्छ हो जायगी, और जो लोग इस धार्मिक नियम को बुद्धि से जानते ही नहीं या आचरण [व्यवहार] में भूल बैठे हैं, वह अशुद्ध अक्षर की भाँति जीवन की पाटी से मिट जायंगे या विनाश की रेखा के नीचे आ जायँगे।

(६)—धर्म का प्राण (तत्त्व अर्थात् आन्तर रूप) तो ऊपर वर्णित हो चुका। वह तो हृदय का पिघलना या घुलना है। खुदी (देहात्मभाव) के स्थान पर खुदाई (ब्रह्मभाव) का आ जाना है। और वह एक ही है, न वह अदल बदल के योग्य ही है। अब रहे धर्म के शरीर (बाह्यरूप) तो वे कई हैं और देश-काल तथा आवश्यकता के अनुसार भिन्न भिन्न हैं। सर्व साधारण के लिये धर्म से धर्म का शरीर (बाह्यरूप) ही अभिप्रेत होता है, और इसमें हृदय के पिघलने की अपेक्षा समाज रीति-रिवाज, खाना पीना, धर्मनिष्ठ आचार्य, धार्मिक ग्रंथ, एकाग्रता के साधन, परलोक संबंधी विचार, मुक्ति के मार्ग, वादविवाद और तर्क वितर्क इत्यादि बहुत भाग लेते हैं।

जो लोग वास्तविक धर्म से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, वे बाह्य-धर्म को बदलते फिरते हैं। और "किसी धर्म का महत्त्व, एक का अंगीकार करना और दूसरे को छोड़ देना आदि" वे किस विवेचना के फल पर निर्भर" रखते हैं, उनकी वेही जानें, हम इस विषय में कुछ नहीं कह सकते।

(७)—"रचना सृष्टि Creation का मूल कारण और उद्देशः—" यह प्रश्न दूसरे शब्दों में यों वर्णित हो सकता है.

"जगत् क्यों बना ? जगत् कब बना ? जगत् कहाँ बना ? जगत् किस ढंग से बना ?" इत्यादि । या अधिक स्पष्ट किया जाय तो प्रश्न का रूप यह होगाः—"जगत् किस कारण से बना ? किस काल में बना ? किस स्थान पर बना ? किसके द्वारा बना ? इत्यादि ।"

उत्तरः—थोड़ा विचार किया जाय तो जगत् के बड़े बड़े स्तंभ स्वतः कार्य कारण की परम्परा, काल, स्थल और संबंध इत्यादि ही सिद्ध होंगे । इस लिये इस प्रश्न के अन्तर्गत कि "जगत् किस कारण से बना" यह प्रश्न भी शामिल है कि "कार्य कारण की परम्परा" किस कारण से आरम्भ हुई । और यह प्रश्न अनुचित है, इस में अन्योन्याश्रय दोष (Reasoning in a circle) है ।

और इस प्रश्न के अन्तर्गत कि "जगत् किस काल में बना ?" यह प्रश्न शामिल है कि "काल किस काल में उत्पन्न हुआ ?" यह भी अनुचित है । और इस प्रश्न के अन्तर्गत कि "जगत् कहां पर बना ?" यह प्रश्न भी शामिल है कि "देश किस देश में प्रकट हुआ ?" यह भी अनुचित है । इसी प्रकार "किस के द्वारा बना ?" यह भी अनुचित है । अतः मनुष्य अपनी मानुषी दृष्टि से इस विषय पर सिर धुनता हुआ व्यर्थ समय नष्ट करता है ।

कि कस नकशूद नकशायद ब हिकमत ईं मुइम्माँ ।

अर्थात् न किसी ने इस घुण्डी को खोला और न कोई बुद्धि से इसे खोल ही सकता है, यही माया है ।

(८)—<u>धर्म और विज्ञानः</u>—

<u>साधन</u>—विज्ञान शास्त्र परीक्षा (experiments) प्रयोग निरीक्षण (observations=प्रत्यक्षीकरण) अनुमान और

उपमान पर निर्भर है और इसमें अन्वय व्यतिरेक (Method of agreement and difference) से कारण कार्य का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। धर्म का तात्त्विक नियम भी जो प्रश्न (५-घ) के उत्तर में लिखा जा चुका है, परीक्षा, निरीक्षण, अनुमान और उपमान से सिद्ध होता है, और अन्वय व्यतिरेक के न्याय (विधि) पर निर्भर है। कोई भी व्यक्ति यदि अपने चित्त की अवस्था का ठीक ठीक वर्णन बिना घटाये बढ़ाये लिखता जाय और जो जो घटनाएँ तथा दुःख सामने आता जाय उसे भी लेखबद्ध करता जाय,तो रसायन शास्त्र [Chemistry] और शारीर शास्त्र [Physiology] के साधन को बर्ताव में लावे तो धर्म के तात्त्विक नियम की सचाई [सत्यता] का उपासक अपने आप होना पड़ेगा।

उद्देश—विज्ञान शास्त्र और धर्म के बर्ताव में इतना भेद है कि विज्ञान शास्त्र तो बाह्य पदार्थों पर परीक्षा और निरीक्षण करेगा, जो प्रायः सुगम है, और धर्म आध्यात्मिक तथा आभ्यन्तर अवस्थाओं पर परीक्षा और निरीक्षण करेगा जो बहुधा बहुत कठिन है।

विज्ञान शास्त्र का उद्देश है अनेकता में एकता को खोजना [To discover unity in variety] और संसार में एकता को प्रकट करना। जैसे वृक्ष से गिरते हुए सेब में और पृथ्वी के चहुँ ओर घूमते हुए चंद्र में एक ही नियम [गुरुत्वाकर्षण] का पता लगाना, और विकासवाद के द्वारा छोटे से छोटे वनस्पति के बीज से लेकर मनुष्य तक की एकता का संबंध और पहुँच दिखलाना। और धर्म का उद्देश भी [वरन् स्वयं धर्म] यही है कि बाह्य भेद विरोध में मेल और एकता बल्कि सारे संसार में एकता और अभेद का देखना और वर्तना।

भेद दोनों में इतना है कि विज्ञान शास्त्र बुद्धि और विद्या के द्वारा एकता का रंग दिखाता है और धर्म आचरण [व्यवहार] तथा अनुभव द्वारा अभेद में गोते दिलाता है।

उर्धर अर्नेष्ट हैकल, पॉल कैरस, रूमेनेज़ आदि आधुनिक पश्चिम के विज्ञानशास्त्री वाह्य जगत् में एकता ही एकता पुकारते हैं और इधर उपनिषद, ताउज़िम [Taosim] और तसव्वफ [Sufism] आदि प्राचीन धर्म एकता ही एकता हमारे रोम रोम में उतारते हैं।

विज्ञानशास्त्र अधिकतर प्रत्यक्ष प्रमाण पर चलता है। धर्म भी यदि साक्षात्कार पर निर्भर न हो तो धर्म ही नहीं वरन् सुनी सुनाई कहानी है, या पक्षपात है।

पर भेद इतना है कि विज्ञानशास्त्र चूंकि नामरूप से अधिक संबंध रखता है, अतः बाह्य इन्द्रियों की सहायता की आवश्यकता है, और धर्म चूंकि आत्मसत्ता (Substance) को सीधे सीधे अनुभव में लाता है, इस लिये उस अन्तर्दृष्टि को वर्तता है जो बाह्य नेत्रों का नेत्र [ज्योति] है। आजकल के मनोविज्ञान शास्त्र (Psychology) के शब्दों में धर्म हृदय और अन्तःकरण (Ganglionic Centres) को प्रकाशित करता है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

ब्रह्मचर्य ।

(ता० ९-९-१९०५ को फैजाबाद में दिया हुआ व्याख्यान ।)

जो नर राम नाम ले नाहीं,
सो नर खर कूकर शूकर सम वृथा जिये जन माँही ।

ओऽम्! ओऽम् !! ओऽम्!!!

तुझे देखें तो फिर औरों को किन आँखों से हम देखें ।
यह आंखें फूट जायँ गर्चि इन आंखों से हम देखें ॥

जिन अर्गन[1] होते चाह चली खर कूकन[2] की, धिक्कार उसे ।
जिन खाय के अमृत वाञ्छा रही लिद पशुअन की, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के राज को इच्छा रही चक्की चाटन की, धिक्कार उसे ।
जिन पाय के ज्ञान को इच्छा रही जग विषयन की धिक्कार उसे ।

ओ हो हो हो !!!

जीता तो वही है, जो सत् में, नारायण में राम में रहता सहता, चलता फिरता और श्वास लेता है। जिन्दगी तो यही है । आप कहेंगे कि तुम बस आनन्द ही आनन्द बोलते हो, संसार के काम काज कैसे होंगे और दुःख दर्द कैसे मिटेंगे, परन्तु

हर जा कि सुल्तां खेमा जद गौगा न मानद आमरा ।

अर्थः—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया वहां साधारण लोगों का शोर न रहा ।

जहां पर सत्, प्रेम, नारायण, का निवास है, जिस हृदय में हरिनाम, ब्रह्म बस जाय, तो वहां शोक, मोह, दुःख, दर्द

---

(१) एक प्रकार का बाजा । (२) गधे की आवाज ।

आदि का क्या काम ? क्या राजाधिराज के खेमे के सामने लुंडी बुच्ची कोई फटक सकती है ? सूर्य जिस समय उदय हो जाता है, तो कोई भी सोया नहीं रहता। पशुओं की भी आंखें खुल जाती हैं, नदियां जो बर्फों की चादरें ओढ़ी पड़ी थीं, उन चादरों को फेंक कर चल पड़ती हैं, उसी प्रकार सूर्यों का सूर्य आत्मदेव जब आपके हृदय में निवास करता है, तो वहां कैसे शोक, मोह, और दुःख ठहर सकते हैं ? कभी नहीं, कदापि नहीं। दीपक जल पड़ने से पतंगें आप ही आप उसके आसपास आना शुरू हो जाती हैं। चश्मा जहां वह निकलता है, तृषा बुझानेवाले वहां स्वयं जाने लग पड़ते हैं। फुल जहां खुद खिल पड़ा, भँवरे आप ही आप उधर खींच कर चल आते हैं। उसी प्रकार जिस देश में धर्म, ईश्वर का नाम रोशन हो जाता है, तो संसार के सुख वैभव और ऋद्धिसिद्धियां आप ही खींची हुई उस देश में चली आती हैं। यही कुदरत का कानून है, यही प्रकृति का नियम है। ओऽम् ओऽम् ओऽम् !

बेशक, राम को आनन्द के बिना और बात नहीं आती। बादशाह का खेमा लग जाने पर चोर चकोर नहीं आने पाते, आनन्द का डेरा जम जाने से शोक और दुःख ठहर नहीं सकते, इसलिये आनन्द के सिवाय राम से और क्या निकले ? ओऽम्, आनन्द ! आनन्द !

परन्तु आनन्द का डेरा डालने से पहले जमीन का साफ कर लेना भी आवश्यक है। इसलिये आज राम, जिसके यहां आनन्द की बादशाहत के सिवाय कुछ और है ही नहीं, झाड़ू लेकर झाडने बुहारने का काम कर रहा है। जिस तरह दूध या किसी और अच्छी वस्तु को रखने के लिये बरतन का

स्वच्छ कर लेना जरूरी है, इसी तरह आनन्द को हृदय में रखने के लिये हृदय का शुद्ध कर लेना भी आवश्यक है। सो आज राम इस सफाई का–विशुद्धि का यत्न बतलायगा। लोग कहते हैं कि घी खाने से शक्ति आ जाती है, किन्तु जब तक ज्वर दूर न हो जाय घी अपथ्य ही अपथ्य है। कड़वी कुनैन या चिरायता या गिलो खाये बिना ज्वर दूर न होगा, अर्थात् जब तक कि मन पवित्र और शुद्ध न होगा, ज्ञान का रंग कदापि न चढ़ेगा।

ओरा ब चश्मे पाक तवा दीद चूँ हलाल,
हर दीदा जल्वगाहे आँ माह पारा नेस्त।

अर्थः—विशुद्ध दृष्टि से तु उस प्रियतम को द्वितिया के चन्द्रोदय के समान देख सकता है, परन्तु सब के नेत्र उसका दर्शन नहीं कर सकते।

जब राम पहाड़ों पर था, तो उसने एक दिन एक मनुष्य को देखा कि गुलाब का एक सुन्दर पुष्प नाक तक ले गया और चिल्ला उठा। उसमें क्या था? इस सुन्दर फूल में एक मधु-मक्षिका बैठी थी, जिसने उस पुरुष की नाक की नोक में एक डंक मारा, इसी कारण से, वह चिल्ला उठा। और दुःख से व्याकुल हो गया और पुष्प हाथ से गिर पड़ा। इसी तरह समस्त कामनायें और विषय वासयायें देखने में उस गुलाब के फूल की तरह सुन्दर और चित्ताकर्षक प्रतीत होती है, किन्तु उनके भीतर वास्तव में एक विषयी भिड बैठी है, जो डंक मारे बिना न रहेगी। आप समझते हैं कि हम सुन्दर २ पुष्पों (संसार के पदार्थों) और विलासों को भोग रहे हैं, किन्तु वास्तव में वह विष जो उनके अन्दर है, आपको भोगे बिना न रहेगा। संसार के लोग जिसको आनन्द या स्वाद कहते

हैं, वह अपना ज़हरीला असर उत्पन्न किये बिना भला कब रह सकता है ?

हाय, आज भीष्म के देश में ब्रह्मचर्य पर दो बातें कहनी पड़ती है, उस भीष्म को ब्रह्मचर्य तोड़ने के लिये ऋषि मुनि और सौतेली मां, जिसके लिये उसने ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली अर्थात् प्रण किया था, उपदेश करती है कि तुम ब्रह्मचर्य तोड़ दो, राजमंत्री, नगरजन, ऋषि मुनि सब आग्रह करते हैं कि तुम अपना व्रत छोड़ दो। तुम्हारे विवाह करने से तुम्हारा कुल का वंश बना रहेगा, राज बना रहेगा, इत्यादि इत्यादि। किन्तु नवयुवा भीष्म यौवनावस्था में जिस समय विरला ही कोई ऐसा युवक होता है कि जिसको-चित्त बाह्य सौन्दर्य और चित्ताकर्षक रंगराग के झूठे जाल में न फँसता हो-उस समय यौवनपूर्ण भीष्म. शूरवीर भीष्म यूं उत्तर देता है, "तीनों लोक को त्याग देना, स्वर्ग का साम्राज्य छोड़ देना, और उनसे भी कुछ बढ़कर हो उसे न लेना मंजूर है, परन्तु सत् से विमुख होना स्वीकार न करूंगा। चाहे पृथ्वी अपने गुण (गन्ध) को, जल अपने स्वभाव (रस-स्वाद) को, प्रकाश अपने गुण (भिन्न २ रंगों का दिखलाना) को, वायु अपने गुण (स्पर्श), को सूर्य अपने प्रकाश को, अग्नि अपनी उष्मा को, चन्द्र अपनी शीतलता को, आकाश अपने धर्म (शब्द) को, इन्द्र अपने वैभव को, और यमराज न्याय को छोड़ दें, परन्तु मैं सत्य को कदापि नहीं छोडूंगा।

तीनों लोकों को करूं त्याग और वैकुण्ठ का राज्य छोड दूं,
पर मैं नहीं छोडता सत् का मेराज[१]।
पंच तत्त्व, चंद्रमा, सूर्य, इन्द्र और यमदेव,
दूं छोड खासियत अपनी मगर सत् है मेरा सरताज[२]।

---

(१) सीढी, मार्ग। (२) मुकुट।

हनूमान का नाम लेने और ध्यान करने से लोगों में शौर्य और वीरता आ जाती है। हनूमान को महावीर किसने बनाया? इसी ब्रह्मचर्य ने। मेघनाद को मारने की किसी में शक्ति न थी। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र ने भी यह मर्यादा दिखलाई कि मैं स्वयं राम हूं, किन्तु मैं भी मेघनाद को नहीं मार सकता। उसको वही मारेगा कि जिसके अन्तःकरण में बारह वर्ष तक किसी प्रकार का मलिन विचार न आया हो। और वह लक्ष्मण जी थे। जिन २ लोगों ने पवित्रता अर्थात् चित्त की शुद्धि को छोड़ा उनकी स्थिति खराब होने लगी। विजय उस मनुष्य की कभी नहीं हो सकती, जिसका हृदय शुद्ध नहीं है। पृथ्वीराज जब रणक्षेत्र को चला, जिसमें यह सैकड़ों वर्ष के लिये हिन्दूओं की गुलामी शुरू हो गई, लिखा है कि चलते समय वह अपनी कमर महारानी से कसवा कर आया था। नेपोलियन जैसा युद्धवीर जब अपनी उन्नति के शिखर से गिरा, अड़ड़ड़ धम। लिखा है कि जाने से पहले ही वह अपना खून-अपना घात आप कर चुका था। खून क्या लाल ही होता है? नहीं नहीं सफेद भी होता है। अर्थात् उस रणक्षेत्र से पहली शाम को वह एक चाह में अपने तईं पहले ही गिरा चुका था। अभिमन्यु कुमार जैसा चन्द्रमा के समान सुन्दर, सूर्य के समान तेजस्वी, अपूर्व, नवयुवक जब उस कुरुक्षेत्र की भूमि में अर्पण हुआ और उस युद्धि में काम आया कि जहां से भारत के क्षत्री शूरवीरों का बीज उड़ गया, तो युद्ध से पहले वह (अभिमन्यु) क्षत्रिय वंश का बीज डाल कर आ रहा था। राम जब प्रोफेसर था, उसने उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की नामावलि बनाई थी, और उनके भीतर की दशा और आचरण से यह परिणाम निकाला था, कि जो विद्यार्थी परीक्षा के दिनों या उसके कुछ दिनों पहले

विषयों में फंस जाते थे, वे परीक्षा में प्रायः फेल अर्थात् असफल होते थे, चाहे वे वर्षभर श्रेणी में अच्छे क्यों न रहे हों। और वे विद्यार्थी जिनका चित्त परीक्षा के दिनों में एकाग्र और शुद्ध रहा करता था वे ही उत्तीर्ण और सफल होते थे। बाइबल में शूरवीरता में अति प्रसिद्ध साम्सन (Samson) का दृष्टान्त आया है। मगर जब उसने स्त्रियों के नेत्रों की विषमयी मदिरा को चखा तो उसकी समस्त वीरता और शौर्य को उडते जरा देर न लगी। एक वीर नर ने कहा है:—

"My strength is as the strength of ten
Because my heart is pure.

* * * *

I never felt the kiss of love,
Nor maiden's hand in mine."

TENNYSON.

अर्थः—दस नवयुवाओं की मुझ में शक्ति है क्योंकि मेरा हृदय पवित्र है। कामासक्त होकर न मैं ने कभी किसी स्त्री को चुम्बन लिया, न किसी तरुणी को हस्तस्पर्श।

जैसे तेल बत्ती के उपर चढ़ता हुआ प्रकाश में बदल जाता है, वैसे ही जिस शक्ति की अधोमुख गति है, यदि ऊपर की तर्फ वहने लग पड़े, अर्थात् उर्ध्वरेतस् बन जाय तो विषयवासना रूपी बल, ओजस् और आनन्द में बदल जाता है। अर्थशास्त्र में बहुधा आप सज्जनों ने पढ़ा होगा कि पदार्थ विज्ञान वेत्ताओं के सिद्धान्त से स्पष्ट फलितार्थ होता है और जिसमें यह दिखलाया है कि किसी देश में जनसंख्या का बढ़ जाना और भलाई का स्थिर रहना एक ही समय में असंभव है, एक दूसरे से विरुद्ध है। अगर बागीचा में

गोडी न की जाय, और पेड़ों की काट छांट न की जाय तो थोड़े ही दिनों में बाग वन हो जायगा, सब रास्ते बन्द। इसी तरह जातीय सुस्थिति और वैभव को स्थायी रखने के लिये नैतिक पद्धति (Ethical process) जिसको हक्सले (Huxley) ने उद्यानपद्धति से वर्णित किया है, वर्ताव में लाना पड़ता है। अर्थात् लोकसंख्या को किसी विशिष्ट मर्यादा से अधिक न बढ़ने देना उचित होता है, चाहे यह विदेशगमन से प्राप्त हो, चाहे संतान के कम पैदा करने से। जब सीधी तरह से कोई बात समझ में नहीं आती, तो डंड के जोर से सिखलाई जाती है। सभ्यताहीन लोगों में पहले पशुओं की तरह मां बहन का विचारविवेक न था, किन्तु शनैः २ वे इस नियम को समझने लगे और मां बहन इत्यादि निकट के सम्बन्धियों में विवाह का रिवाज बन्द कर दिया। कुछ आचार विचार को पाशव वृत्ति और व्यवहार का नाम देकर तुच्छ मान लिया जाता है, किन्तु न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो मनुष्य की अपेक्षा पशु अधिक शुद्ध और पवित्र हैं, तथापि साथ ही साथ वे आचार विचार पशुओं को बदनाम करने के योग्य भी हैं। कारण यह है कि गो मनुष्यों की अपेक्षा पशु ब्रह्मचर्य का अधिक पालन करते हैं, तथापि सन्तति धड़ाधड़ बढ़ाते चले जाते हैं, जिसका परिणाम भिड़ाई और जीवन के लिये युद्ध-कलह (Struggle for life) होता है। पशुओं की सन्तति केवल लड़ मरने और अशक्तों के नाश होने से स्थायी रहती है। खेद है उन मनुष्यों पर, जो न केवल पशुओं की तरह सन्तति उत्पन्न करते जाने में विचारहीन हैं, बल्कि पशुओं से बढ़कर वक्त बेवक्त अपना सफेद खून श्वेतशुद्ध क्षणिक आनन्द के लिये बहा देने के लिये कटिबद्ध हैं। जिस समय हम लोग अर्थात् आर्यन लोग

इस देश में आये, उस समय हमको जरूरत थी कि हमारी सन्तति और संख्या अधिक हो, इस लिये बिवाह के समय इस प्रकार की प्रार्थना की जाती थी कि इस पुत्री के दस पुत्र हों। मगर इन दिनों दस पुत्रों की इच्छा करना ठीक नहीं है। तुम कहते हो कि मरने के बाद तुम्हें स्वर्ग में पुत्र पहुँचायेंगे। मगर अब तो जीते जी यह बच्चे, जिन्हें तुम पेटभर रोटी भी नहीं दे सकते, दुःख, आपत्ति अर्थात् नरक के कारण हो रहे हैं। प्यारो, उधार के पीछे नक़द को क्यों छोड़ते हो? इस किस्म का प्रश्न अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से गीता में किया था, कि पिंड कौन देगा और पितृ किस प्रकार स्वर्ग में पहुँचेंगे। कृष्ण भगवान ने जो जवाब दिया है उसको भगवद् गीता के दूसरे अध्याय में ४२ से लेकर ४६ श्लोक तक अपने अपने घरों में जाकर देखलो।

भगवन्, स्वर्ग कोई मुक्ति नहीं है, स्वर्ग के बाद तो फिर यहां आना पड़ता है। स्वर्ग के विषय में क्या ही खूब कहा हैः—

"जिन्नत परस्त जाहिद कबहक्क परस्त है;
हूरों पर मर रहा है यह शहवत परस्त है।

अर्थात् जो बैकुंठ की कामना रखता है, वह ब्रह्म का उपासक कैसे कहा जा सकता है, वह तो अप्सराओं की इच्छा रखता है, और कामासक्त है।

प्यारो, अगर तुम लोकसंख्या के कम करने में यत्न न करोगे, तो प्रकृति अपने जंगली पद्धति (wild process) को काम में लायगी, अर्थात् कांट, छांट करना शुरू कर देगी, जैसा कि महर्षि वसिष्ठ जी ने फरमाया है। (१) महामारी (२) दुर्भिक्ष (३) भूकम्प (४) युद्ध कलह या प्लेग इत्यादि छांट शुरू हो जायगी। अगर गृहकलह, दुर्भिक्ष, प्लेग आदि

ना मंजूर है,तो पवित्रता,ब्रह्मचर्य,हृदय की शुद्धि और निर्मल आचार व्यवहार को वर्त्ताव में लाओ, जगत में प्रेम और जातीय एकता कदापि स्थायी नहीं रह सकते, जब तक कि लोकसंख्या की वृद्धि और जमीन की पैदावार (धान्य की उत्पत्ति) परस्पर ठीक २ एक समान न रहे। संसार में कोई देश ऐसा नहीं है जो निर्धनता में हिन्दुस्तान से कम हो और लोकसंख्या में इससे अधिक। ऐसी दशा में झगड़े बखेड़े और स्वार्थ परायणता भला क्यों कर दूर हो सकती है, और मेलमिलाप और एकता क्योंकर स्थायी रह सकते हैं ? दो कुत्तों के बीच में एक रोटी का टुकड़ा डाल कर कहते हो कि मत लड़ो। भला यह कैसे संभवित हो सकता है ? इस दशा में प्रेम और एकता का उपदेश करना, लेक्चर बाजी की हँसी उड़ाना और उपदेश का मखौल करना है। एक गोशाला में दस गायें हों, और चारा केवल एक के लिये हो, तो गायें ऐसी गरीब, शान्त स्वभाव और अवाक् पशु भी आपस में लड़ने मरने विना नहीं रह सकते। भला भूखे मरते भारतवासी कैसे प्रेम और एकता स्थायी रख सकते हैं ? विज्ञान शास्त्र में यह वार्त्ता सिद्ध हो चुकी है कि, किसी पदार्थ की समतोल अवस्था (equilibrium) के लिये जरूरी है कि एक अणु या अंश की अन्तर्गत गति के लिये इतनी जगह हो कि दूसरे अणु की गति वा व्यापार में बाधा न पड़ने पाय। अब भला बताओ कि जिस देश में एक आदमी के पेट भर खाने से बाकी दस आदमी आधे तृप्त या भूखे रह जायँ, उस देश में भिन्न २ व्यक्तियां एक दूसरे के सुख में बाधा डालने वाली क्यों न हों ? और ऐसे देश की शान्ति और समतोल अवस्था (equilibrium) कैसे स्थायी रह सकती है ? क्या तुम भारतवर्ष को कलकत्ता की काल-कोठरी

(Black Hole) बनाये विना नहीं रहोगे? जो वस्तु नकम्मी हो जाती है, वह इस लेम्प के समान नीचे उतार दी जाती है, जो अभी उतार दिया गया है*। आखिर कब समझोगे? मनुष्य बल को, अपने पुरुषत्व को इस प्रकार नाश मत करो कि जिससे तुम्हारी भी हानि हो और समस्त देश की भी। इसी शक्ति को ब्रह्मानन्द और आत्मबल में बदल दो। दुनियां का सब से बड़ा गणितशास्त्री सर आईझक न्यूटन ८० साल से अधिक आयु तक जिया और वह ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करता था। दुनियां का लगभग सब से बड़ा तत्त्व-विचारक कैंट बहुत बड़ी उम्र तक जिया और वह भी ब्रह्म-चारी था। हर्बर्ट स्पेन्सर और स्वीडनवर्ग जैसे संसार के खयालों को पलटा देने वाले ब्रह्मचारी ही हुए हैं। कुछ अंगरेज़ी वर्त्तमान पत्रों ने यह खयाल उड़ा रक्खा है कि ब्रह्मचारी का जीवन आयु को घटाता है। विचार पूर्वक देखने से मालूम होता है यह परिणाम पेरिस और एडिनबरो में कुछ वर्षों की जन संख्या की वृद्धि के रिपोर्टों से निकाला गया था। अब जिसमें किञ्चित् भी विवेकशक्ति है, यदि विचार करे तो देख सकता है कि पेरिस और एडिनबरो में उन्हीं लोगों का विवाह नहीं होता जो बीमार हो, कंगाल हो, उद्योगहीन हो, या अन्य रीति से घर २ भटकते फिरते हों। इस लिये उन देशों में अविवाहित और एकाकी जीवन अकाल मृत्यु का कारण नहीं, वल्कि अकाल मृत्यु ही अविवाहित जीवन का कारण होता है। और ये अविवाहित लोग जो आत्मिक और बौद्धिक व्यापार से शून्य है, ब्रह्मचारी नहीं कहला सकते। बस,

---

*एक लेम्प जो मेज पर रक्खा था और जिसकी चिमनी काली पड गई थी, उस समय मेज से नीचे उतार दिया गया था, जिसका यह उल्लेख है।

ब्रह्मचर्य पर जनसंख्या के कारण से विरोध करना नितान्त अनुचित है।

अब हम दो एक अमेरिका देश के ब्रह्मचारी का जीवन व्यतीत करनेवालों का हाल सुनाकर समाप्त करेंगे। हमारे भारत की विद्या को विदेशियों ने प्राप्त करके उससे लाभ उठाया, और हम वैसे ही कोरे के कोरे रह जाते हैं यह कैसे शोक की बात है? "हमारे पिता ने कूप खुदवाया है" इसके कहने से हमारी प्यास नहीं जायगी। प्यास तो पानी के पीने से ही जायगी। इसी तरह शास्त्रों पर आचरण करने से आनन्द होगा। अमेरिका के सब से बड़े लेखक एमर्सन (Emerson) का गुरू, ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला थोरो (Thoreau) भगवद्गीता के विषय में इस प्रकार लिखता है कि प्रति दिन मैं गीता के पवित्र जल से स्नान करता हूं। गो इस पुस्तक के लिखनेवाले देवताओं को अनेक वर्ष व्यतीत हो गये, लेकिन इसके बराबर की कोई पुस्तक अभी तक नहीं निकली है। इसकी खूबी व महत्त्व हमारे आज कल के ग्रन्थों से इस क़दर चढ़ बढ़कर है कि कई बार मैं यह खयाल करता हूं कि शायद इसके लिखे जाने का समय नितान्त निराला समय होगा। पाताल लोग में अर्थात् अमेरिका में उपनिषद्, भगवद्गीता और विष्णुपुराण को सब से पहले प्योर थोरो ने रायज़ (introduce) किया। सर टामस रो आदि जो यूरोप से हिन्दुस्तान में आये, वह उन पवित्र ग्रन्थों के लातीनी अनुवादों को यहां से यूरोप में ले गये, और फ्रांस से यह शख्स थोरो उन अनुवादों को अमेरिका में ले गया। इन पुस्तकों के अनुवादों को फिरिंगियों ने फारसी भाषा से लातीनी भाषा में किया था, क्योंकि उस समय यूरोप की शिक्षा लातीनी भाषा में थी, और प्रायः इसी भाषा में ग्रन्थ

लिखे जाते थे। अगर सच पूछो तो वेदान्त का झण्डा पहिले पहल इसी पुरुष (थोरो) ने अमेरिका में गाड़ा। एक दिन जंगल में सैर करते हुये इससे एमर्सन ने पूछा कि इन्डियन अर्थात् अमेरिका के असली बाशिन्दों के तीर कहां मिलते हैं? उसने साधारणतः अपना हर समय का वही उत्तर दिया "जहां चाहो"। इतने में ज़रा झुका और एक तीर मार्ग से उठाकर झट दे दिया और कहा "यह लो"। एमर्सन ने पूछा कि देश कौन सा अच्छा है तो उत्तर दिया कि "अगर पैरों तले की पृथ्वी तुमको स्वर्ग और वैकुण्ठ से बढ़ कर नहीं मालूम देती तो तुम इस पृथ्वी पर रहने के योग्य नहीं"। उसके द्वार हर समय खुले रहते थे और रोशनी और वायू को कभी रोक टोक न थी। एमर्सन कहता है कि उसके मकान की छत में एक भिड़ों का छत्ता लगा हुआ था और भिड़ों और शहद की मक्खियों को मैं ने उसके साथ चारपाई पर बेखटके सोते देखा मगर इस समदर्शी को कभी दुःख नहीं पहुंचाती थीं।

सांप उसकी टांगों से लिपट जाते थे मगर उसे किञ्चित् परवा नहीं। काटने तो कैसे क्योंकि उसके हृदय से दया और प्रेम की किरणें फूट रही थीं। और वह तो व्यालभूषण बना हुआ था। और इस तरह का शंकर के समान अनुभव रखता था। जिस पुरुष को संसार के नखरे टखरे और क्रोध कटाक्ष नहीं हिला सकते, वही संसार को ज़रूर हिला देगा। अमेरिका का एक और महापुरुष वोल्ट व्हिटमन [Walt Whitman] नामी अभी वर्तमान में गुज़रा है, जो "स्वतंत्रता के युद्ध"(War of Independence,) के दिनों में स्वतंत्रता का गीत गाता फिरा करता था। उसके मुख से प्रसन्नता टपकती थी और हाथों से काम करने का स्वभाव रखता

था। उसका लड़ाई में यही काम था कि पीड़ितों की मरहम-पट्टी करे, प्यासों को पानी और भूखों को रोटी दे, और लोगों के दिलों में हिम्मत और साहस को पैदा कर दे, तथा आनन्द से गीत गाता फिरे। उसकी आंखों से आनन्द बरसता था। उसकी आवाज़ से खुशी टपकती थी, जिस तरह कुरुक्षेत्र की रणभूमि में कृष्ण भगवान्, और भूत पिशाचों के बीच में शिव भगवान् विचरते थे, इसी तरह यह महापुरुष अमेरिका के उस रणक्षेत्र में लाधड़क घूमता फिरता था। उसने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम ' घास की पत्तियां" (Leaves of grass) है, जिसके पढ़ते २ मनुष्य आनन्द से गद्गद हो जाता है।

ओ३म् ! आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !

डटकर खड़ा हूं खौफ से खाली जहान में।
तसकीने दिल भरी है मेरे दिल में, जान में॥

सूंघे जमां मकां है मेरे पैर मिस्ले सग।
मैं कैसे आ सकूं हूं कैदे बयान में॥

* * * *

बादशाह दुनियां के हैं मोहरे मेरी शतरंज के।
दिल्लगी की चाल हैं सब रंग सुलह व जंग के॥

रक्स शादी से मेरे जब कांप उठती है जमीं।
देखकर मैं खिलखिलाता कहकहाता हूं वहीं॥

खुश खड़ा दुनिया की छत पर हूं तमाशा देखता।
गाबगाह देता लगा हूं वहिशियों की सी सदा॥

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

अकबर-दिल्ली।

अर्थात्

आत्म महत्ता।

मस्त हाफिज़ का वचन हैः—

कुलाहे-ताजे-सुलतानी कि बीमे-जाँ दरो दर्जस्त।
कुलाहे-दिल कशस्त अम्मा, बदर्दे-सर नमें अर्जेद॥

अर्थात् बादशाह का ताज कि जिसमें हमेशा जान का भय है, दिल को लुभाने वाला होता है मगर सिर के दर्द के बराबर भी वह नहीं उतरता (कीमत नहीं की जाती)।

ख्वाज़ा हाफिज़ ने हमारे अकबर को नहीं देखा था, नहीं तो इस तरह का इशारा कभी न करते, जो अंगरेज कवि शेक्सपियर ने किया हैः—

"भारी वह गम से सर है कि जिस सर पे ताज है।*

क्या दोस्त, क्या दुश्मन, क्या आईन-अकबरी के शेख साहब (अब्बुल फजल) क्या खुफिया नवीस हज़रत मुल्ला (बदावनी), क्या पुर्तगाल के पादरी, क्या सिंध गुजरात के जैनी, क्या अमीर क्या ग़रीब, क्या आलिम (विद्वान्) क्या जाहिल (मूर्ख), क्या रिन्द (दुराचारी) क्या पारसा (जितेन्द्रिय) सब के दिलों में जिसकी हुकूमत थी, जहां चाहे और जिस गोद को चाहे सरहाना बना कर बेखटके नींद में पैर पसार सकता था, ऐसा कौन था? हिन्दुस्तान का शाहंशाह अकबर।

---

*"Uneasy lies the head that wears a crown."
SHAKESPEARE.

फ्रांस के राज्यक्रान्ति के समय के बादशाह के विषय में टामस पेन ने यह करुण वचन कहा है—"हाय! यह उसका दुर्भाग्य था कि बादशाह हुआ"। बेशक जिस राजा का राज प्रजा की भूमि और शरीरों तक ही परिमित हो, उससे बढ़ कर गरीब, दया का पात्र, दिवालिया और कौन हो सकता है?

क्या अकबर के दुश्मन न थे?—थे क्यों नहीं। लेकिन महाराना प्रताप जैसे महा साहसी, वीर सच्चे धर्मात्मा क्षत्रिय का दुश्मन होना तो अकबर के गौरव को दूना करता था।

ख़ैर हमें तो इस समय अकबर के शासन के एक दूसरे ही पहलू से प्रयोजन है।

ईश्वर स्मरण।

क्रामवेल, बाबर, महमूद, रणजीतसिंह एवं और भी हजारों बादशाहों और वीरों का नियम था कि जो युद्ध शुरू करते, सच्चे दिल से ईश्वर के दरबार में अपना सर्वस्व अर्पण कर के ईश्वर के नाम पर शुरू करते थे, और उनकी विजय भी उनकी सचाई और ईश्वर स्मरण के अनुसार थी। बहुत ख़ूब! लेकिन काम के आरंभ में विनती और सहायता माँगना तो कौनसी बड़ी बात है! हम सच्चा वीर उसी को मानते हैं, जिसकी हार्दिक निष्ठा और त्याग विजय के बाद जोश मारे।

जिसे देश में यादे-खुदाही रही, जिसे तैश में खौफे-खुदा न गया।

अर्थात् जिसको सुख में ईश्वर स्मरण ही रहा और क्रोध के समय ईश्वर का भय नहीं गया।

सामवेद की केनोपनिषद् में एक कथा आई है कि इन्द्रियों

के देवता एक बार बड़े मार्के की लड़ाई जीत चुके और जैसा कि अभी तक नियम चला आ रहा है भोगविलास और आमोद प्रमोद में विजय का उत्सव मनाने लगे। उपनिषदों में बड़ी ही उत्तमता के साथ दिखाया गया है कि किस प्रकार इन देवताओं को शिक्षा मिली। ऐसी शिक्षा को याद रखने वाला भारत-वर्ष का एक सम्राट अकबर हुआ है। जब विजय पर विजय पाता गया और एक के बाद दूसरा सूबा उसके हाथ आता गया, यहां तक कि लगभग संपूर्ण भारतीय साम्राज्य उसके शासनाधीन होगया, जब वह राज्य की सीमा और आबादी के विचार से सम्राटचीन छोड जगत में सब से बड़ा सम्राट होगया, जब उसके सौभाग्य का नक्षत्र ठीक परम उच्चता पर पहुंचा, जब वह चढ़ते चढ़ते, उस फिसलनी घाटी तक उदय पा चुका कि जहां इधर तो नीचे अड़े हुए लोग मुँह तकते हैरान खड़े पड़े कहते हैं—"यह जायगा बढ़कर कहां रफ़्ता रफ़्ता।"

और उधर नेपोलियन जैसा वीर पैर फिसलते ही धर्म से भूगर्भ में गिरा, और गिरते ही चकनाचूर ! ऐसी दशा में उस भूल जानेवाली घड़ी में देखिये।

"सब को जब भूल गया, इनको खुदा याद आया" सोचने लगे कि यह हाड़ और चाम का जरा सा शरीर, इस में यह शक्ति कहां से आई ? किसके प्रसाद से ? "दौलत गुलामे-मन शुदो-इकबाल चाकरम" अर्थात् धन मेरा सेवक और वैभव मेरा अनुचर होता जा रहा है। इस दिमाग़ और दिल में तेज कहां से आता है ? इस मन को चलाता कौन है ? इन प्राणों को हिलाता कौन है ?"

क्या छिपाना है ? आश्चर्य है ? प्रतिदिन इस प्रकार की

विचार-धारा से उस प्रकाशस्वरूप, चिदानंदघन परमात्मा के धन्यवाद में बादशाह सलामत का यह हाल हो गया कि "दिल तेरा, जान तेरी, आशिके-शैदा तेरा"। दिन रात का धंधा हो गया:—

नमाजो-रोज:-ओ-तसबीहो-तोबा-इस्तगफार।

अर्थात् नमाज़, रोज़ा, तशबीह (माला), तोबा (पश्चात्ताप) और इस्तगफार (क्षमा प्रार्थना)।

धार्मिक छानबीन।

अकबर के समकालीनों में इंग्लैंड के राजसिंहासन पर महारानी एलिजबथ विराजमान थीं। यह महारानी इंग्लैंड के अन्य शासकों में वैसी ही यशस्विनी है जैसे, हिन्दुस्तान के अन्य बादशाहों में अकबर। इंग्लैंड में एलिज़बथ का शासनकाल या परशिया-जर्मनी में फ्रेडरिक महान् के राज्य समय को विद्या और कला की उन्नति तथा देशप्रबन्ध की उत्तमता की अपेक्षा से तो हिन्दुस्तान में अकबर के राज्य-काल से तुलना कर सकते हैं। ये दोनों छत्रधारी अपने अपने देश में सर्वप्रियता की दृष्टि से अकबर की बराबरी कर सकते हैं लेकिन धार्मिक छान बीन, ईश्वरोपासना और सब संप्रदायों के लिये एक समान रिआयत (पक्षपातरहित बर्ताव) के कारण से अकबर की कीर्त्ति अनुपम है* 'महा-

*नोट:—भारतवर्ष के कई एक (आधुनिक) उपन्यासकारों ने अपने कथानकों को चटकीले भड़कीले बनाने के लिये भोगविलास (इन्द्रिय-सुख की लोलुपता) आदि बहुत से काले रंगों में अकबर की हंसी उड़ाई है और बहुत से ऐसे लोग मौजूद हैं,जिनके सादे दिलों पर यह कथानकों की गप इतिहास का सम्मान पा चुकी है। लेकिन कथानक तो क्या, सारे संसार के ऐतिहासकों को चैलेंज (Challenge) देकर राम पूछता है कि, भला इन्द्रियविलास और अभ्युदय-उन्नति भी कभी एक साथ

राज विक्रम और भोज के समय में भी इसी कोटि का सुख-सौभाग्य प्रजा को प्राप्त था, किन्तु वे दूर दूर की बातें हैं और बिना जांच परताल की हुई। महाराजा अशोक के समय में प्रजा को हर प्रकार का सुख प्राप्त था, विचार और धर्म की पूरी पूरी स्वतंत्रता प्राप्त थी, चीन आदि अन्य देशों के लोक भी हिन्दुस्तान में आते और लाभान्वित हो कर जाते थे, और शिकागो सन १८९३ ई० की तरह हिन्दु-स्तान में सारे संसार के धर्मों का उत्सव भी धूमधाम से हुआ था, किन्तु अकबर का तो न केवल दरबार वरन् हृदय भी लगातार संसार भर के धर्मों का उत्सव-स्थान बन रहा था। किसी धर्म और संप्रदाय के लिये दरवाजा बन्द न था, विद्या, सत् और सत्यता का उपासक चाहे किसी ओर से आवें, सदैव स्वागत करता था। इस वीर पुरुष का हृदय विश्वसम्मिलन का मंदिर था और मत्थे पर किसी विरोधी धर्म या सम्मति के लिये ताला नहीं लगा था। विद्वान्, मुल्ला, शेख क़ाज़ी, पंडित, शाक्त, वैष्णव, जैनी, ईसाई, पादरी और कश्मीर, दक्खिन, पूरब, सिंध, गुजरात, फारस अरब, पुर्तगाल, और फ्रांस तक के लोग अपने २ विश्वास और विचार जी खोल कर बादशाह को सुनाते हैं, क्योंकि बादशाह सलामत अत्यन्त उत्साह से सुनते हैं और उनके न्याय की सराहना करते हैं। दिन को हां नहीं रात को भी, जब लोगों के आराम का समय है, राजराजेश्वर अकबर "विद्या

चल सकते हैं? चमगादड़ तो शायद दोपहर के समय में शिकार करने आ भी निकले, लेकिन सियाह दिली (हृदय की मलिनता) सफलता के तेज को सह नहीं सकती। अगर मन में यह विचार कहीं से जमा बैठे हो कि विश्वासघात और पाप के साथ सुख सौभाग्य का उदय हो सकता है, तो झटपट निकाल दो इस नीच विचार को, उड़ा दो इस झूठे भ्रम को यह प्रकृति के आध्यात्मिक नियम के विरुद्ध है, तुम्हें यह बढ़ने न देगा।

के लिये दीपक के समान जलते रहना चाहिये " सूत्र का जीवन्त उदाहरण बने हुए हैं, मानवप्रेम का प्रदीप प्रकाशित कर रहे हैं।

कुछ पाठकों को दिल्लगी सी बात मालूम देगी कि शाही चबूतरे से रस्से लटकाए जाते हैं और महलों की दीवार के साथ २ एक पलंग खिचा हुआ ऊपर चढ़ता आता है, यहाँ तक कि चबूतरे के पास आ पहुँचा। रात के समय लकटे हुए पलंग पर विराजमान् पंडितजी महाराज, या हजरत सूफिया कराम, या कोई और महाशय अपने व्याख्यान आरंभ करते हैं, और जाग्रतात्मा महाराजाधिराज ध्यानपूर्वक सुनते और प्रश्न करते हैं। कई बार रात की रात तर्क वितर्क में ही बीत जाती है। वाह री ज्ञानप्राप्ति की जिज्ञासा !

बादशाह की आज्ञा से समग्र धर्मों की पुस्तकों के फार्सी में अनुवाद होने शुरू हो गये। इंजील के अनुवाद के शुरू का मिसरा है।

"ऐ नामे-तो जीज़ज़ कृष्टो" !

भागवत, महाभारत, विशेषतः भगवद्गीता और विष्णु पुराण, और कई उपनिषदें फार्सी गद्य और पद्य में पिरोई गईं। इन अनुवादों को सुनते रहना और स्वयं अपने आचरण से उन्हें सुनाते रहना अकबर का सब से बड़ा काम था।

[विषयान्तर—संस्कृत की इन पुस्तकों के फार्सी के अनुवाद बाद में भी हुए, किन्तु साधारणतः ये अकबरवाले अनुवाद थे जिनको फ्रांस के लोग लैटिन भाषा में, जो उन दिनों समस्त योरप की विद्वत्समाज की भाषा थी, अनुवाद करके आंग्ल-देश को ले गये। इस प्रकार ये पुस्तकें पहले फ्रांस में और वहां से जर्मनी में पहुँची। वहां उनका

अत्यंत सन्मान हुआ। श्लेगल, विक्टरकज़न शापनहार, आदि योरप के तत्त्वविचारक लोगों के मनोवेग की अधिकता में हिन्दू शास्त्र की प्रशंसा इन पुस्तकों के सन्मान की साक्षी हैं। बाद में फ्रांस से हैनूी थोरो के द्वारा इन हिन्दू-पुस्तकों के लैटिन-अनुवाद अमेरिका में पहुँचे और थोरो के मित्र एमर्सन के हाथ पड़े। एमर्सन और थोरो के लेख पर वेदान्त का बड़ा भारी प्रभाव पड़ा है और अधिकतर एमर्सन की रचनाओं के कारण अमेरिका में वेदान्त भरा नया धर्म (नूतन मत) चल निकला है, जो बहुत शीघ्र विश्वव्यापी होने की आशा रखता है। संसार के लगभग सब से बड़े विद्या-केन्द्र हार्वर्ड युनिवर्सिटी का तत्त्ववेत्ता प्रोफेसर जमेज़ लिखता है कि सूफी मजहब आम मुसलमानी पर वेदान्त के प्रभाव का परिणाम है। लेखक इस मत से सहमत नहीं है, अलबत्ता इसमें कुछ सन्देह नहीं कि सूफी मत के फैलने में प्रायः कि वेदान्त से बहुत सहायता मिली है। और हमें इस बात के मानने में भी संकोच नहीं कि संस्कृत पुस्तकों के अकबरी अनुवाद हिन्दुस्तान और फारस आदि में सूफीमत के बढ़ाने फैलाने में मुख्य कारण हुए हैं।]

बादशाह का मुखमण्डल वसन्तपुष्प की भांति प्रफुल्ल रहता था। सुशीलता के लिये हँसी मानों ओठों से पिरोई थी। यह प्रसन्नता क्यों न होती? जहां विश्वप्रेम वा ईश्वर-भक्ति है, शोक और क्रोध की क्या शक्ति कि पास फटक सकें?

हरजा कि सुल्ताँ खेमाजद गोगा नमानद आमरा।

अर्थः—जिस स्थान पर राजाधिराज ने डेरा लगाया वहां साधारण लोगों का शोर न रहा।

यादे अल्ताफे-खुदा दर दिल निहाँ दारेम मा।
दर दिले-दोजख बेहिश्ते जाविदां दारेम मा॥

अर्थात् परमात्मा की कृपा का निरन्तर हम हृदय में स्मरण रखते हैं, और इस प्रकार नरक लोक में भी हम नित्य स्वर्ग का अनुभव करते हैं।

जिन लोगों के हृदय ऐसे उदार और जिनके भीतर प्रीति ऐसी विश्वव्यापिनी न थी, उनमें से एक मुल्ला साहब बादशाह को पर्दे के भीतर से यों ताना देते हैंः—

खंदा कर्दन रखना दर कसरे-हयात अफगंदन अस्त,
मेशवी अज हर नसीमे हमचू गुल खंदां चरा॥

अर्थात् हंसना मानो जीवनगृह में छिद्र बनाना है जैसे प्रातः काल की वायु के झकोले से खिले हुए फूल की दशा होती है।

उपदेशक महोदय! आप तो बादशाह की सर्वप्रियता और प्रसन्नमुखता को मृत्यु के आंचल की छाया के नीचे छिपाया चाहते हैं। मौत की गिदड़भबकियां उनको देते फिरो जो विश्वप्रेम से शून्यहृदय हैं, हमारे बादशाह की तो जिह्वा यों पुकार रही है "प्रसन्नमुख होकर मरना अच्छा, और शोकसंतप्त रहकर जीना बुरा।"

मरना भला है उसका जो अपने लिये जिये,
जीता है वह जो मर चुका इंसान के लिये।

तंगदिली (हृदय की संकुचित अवस्था) का उपदेश तो इस दरबार में प्रलाप मात्र हैः—

रूए के जूदे नकुशायद न दीद नीस्त।
हरफे कि नेस्त मगज दरो ना शुनीद नीस्त॥
खंदारू बूदन बेहमज गंजे-गुहर बखशीदन अस्त।
ता ०वानी बर्के बूदन अब्रे नेसानी मबाश॥

अर्थात् वह मुख जो शीघ्र न खिले वह देखने योग्य ही

नहीं है। वह अक्षर कि जिसमें कोई तात्पर्य नहीं वह न सुनने ही योग्य है। प्रसन्नमुख होना मोतियों के खज़ाने के दाने से भी अच्छा है। जब तक कि बिजली बन सकता है, तब तक वर्षा मत बन।

भिन्न धर्मावलंबियों से भी सद्व्यवहार करो। विरोधियों से भी प्रीति करो। व्यक्तिगत शत्रुता को जड़ से उखाड़ डालो, सब से प्रीति करलो, आदि कहना सहज है, किन्तु करना बहुत कठिन। पर हाँ, कठिन हो चाहे कठिनतर, सामान्यतः सदैव और विशेषतः आजकल हिन्दुस्तान में बिना इस सिद्धान्त को आचरण में लाये जातीय एकता और परस्पर मित्रता कदापि उत्पन्न नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि जिस धर्म में उत्पन्न हुए उसे छोड़ो, ढ़िलमिल-यकीन (शिथिल विश्वासी) या रकाबी मज़हब (सब के साथ बैठ कर खाने वाले) बन जाओ; अलबत्ता हम यह अवश्य कहते हैं कि जिस धर्म की चार दीवारी में पैदा हुए उस चार दीवारी से पग बाहर निकालने को पातक समझना अपने आप आत्म हनन करने का पातक है। जहां पर टिकाओ अटल जमाओ, फिसल न जाओ, पर ईश्वर के लिये पग आगे ही बढ़ाओ। किसी चार दीवारी में पैदा होना और परिपालित होना तो एक आवश्यक बात है, अलबत्ता उसी चार दीवारी में बन्द रह कर उसी में मरना पाप है—कुएँ का मेंढक बने रहना पातक है। लेकिन कोई कुछ ही पढ़ा कहे औरों के धार्मिक निश्चयों का वही सम्मान और मूल्य करना चाहिये, जो अपनी चारदीवारी के सिद्धान्तों का करते हैं। लोगों के नाशमान सांसारिक कोष तो लूट कर लेने भी अंगीकार हो जाते हैं, लेकिन कैसे आश्चर्य का बात

है कि और लोग जब अपने आध्यात्मिक कोष (धार्मिक निश्चय वा सिद्धान्त) को विनय से भी उपस्थित करें तो भी घृणा ही रहती है। इस घृणा का असली कारण क्या है ? न्यूनता अर्थात् जिस धर्म में उत्पन्न हुए, उसमें पूर्ण प्रवेश और पूर्ण अनुभव न होना।

आजादी-ए-मा-दर गिरौ-रा-पुख्तगी मास्त, ।
आवेख्ता अस्त अज रगे-स्वामी समरे मा।

अर्थात् हमारी स्वतंत्रता हमारी परिपक्वता के आश्रित है, क्यों कि हमारा फल कच्ची शाख से लटका हुआ है।

प्यारे पाठको ! जिस धर्म में आप पले पोसे, उसके विरोधी लोगों के व्याख्यान-वक्तृताएँ सुनने की तय्यारी के लिये चित्त को कितनी कमर कसनी पड़ती है, अर्थात् कितना साहस करना पड़ता है, किन्तु वाहरे वीर अकबर ! तेरा चित्त है कि सब का चित्त हो रहा है। तू मानो प्रजा के सब घरों में पैदा हुआ था, सब धर्मों की गोदी में खेला था, सब संप्रदायों के यहां पला था, न केवल इस्लाम धर्म ही वरन् हिन्दू-धर्म, जैन-मत, और ईसाई धर्म भी उसी भारी प्रभाव के साथ तेरे जन्मजात धम हो रहे हैं। हिंदुस्तान को "इंतिखावे-जहाँ" नाम देते हैं और तू "इंतिखावे-हिन्दुस्तान" बन रहा है। मनुष्य को आलमे-सगीर (लघु जगत्) कहा करते हैं, किन्तु तू आलमे अकबर (महान् जगत्) बन रहा है। प्रीति का अन्त क्या होता है ? चित्त की एकाग्रता अर्थात् मित्र का मन हमारा मन हो जाय और चित्त की एकाग्रता का अन्तिम छोर क्या है ? हमअक़ीदगी (समभाविकता-सम विश्वास) अर्थात् मित्र के विश्वास और उसका ईश्वर हमारे विश्वास और ईश्वर हो जायँ। और जब यह समान

विश्वास-मैत्री हमारे एक ही प्रकट प्रीति-पात्र तक घिरी न रहे वरन् संपूर्ण ईश्वरीय सृष्टि के साथ वर्ताव में आ जाय, जब हमारा चित्त सब के साथ एक चित्त हो जाय, माता जैसे अपने एक बच्चे को देखती है उसी दृष्टि से जब हम प्रत्येक प्राणी को अपना ही देह-प्राण समझने लगें। सूर्य जैसे सब घरों का दीपक है, उसी तरह जब हमारा चित्त हमें सब हृदयों का चित्त अनुभूत होने लगे, तो पवित्र प्रेम की विभूति प्राप्त होती है। वह कौन सी करामात है जो पवित्र विश्वप्रेम के लिये असंभव है ? वह कौन सा चमत्कार है जो इस सच्चे प्रेमी के लिये बच्चों का खेल नहीं बन जाता ? आज अकबर के इस पवित्र विश्वव्यापी प्रेम का हम नाम रखते हैं:—

अकबर दिली।

अर्थात्

आत्म (प्रेम) महत्ता।

इस अकबर-दिली से क्या नहीं हो सकता ? आईने-अकबरी में लिखा है कि जब अकबर का भीतरी प्रभाव (आत्म बल) बहुत बढ़ गया, और वह वस्तुतः यथा नाम तथा गुणः महान् चित्त वाला, उदार हृदय अर्थात् सुविशाल हृदयवाला बन गया तो उस (अकबर) की दृष्टि से रोगी अच्छे हो जाने लगे। अकबर का ध्यान करने से लोगों की अभिलाषाएँ पूर्ण होने लगीं, दूर-दूर की बातें अकबर के चित्त में प्रकाशित हो जाने लगीः—

इश्क हो रास्त करामात न हो क्या माने !
हस्बे-इरशाद ही सब बात न हो क्या माने !

अर्थात् सच्ची प्रीति होने पर चमत्कार और आज्ञानुसार सब बातें भला कैसे न हों ?

यह कोई नई बात नहीं है । हज़रत मुहम्मद, ईसा. हिन्दुओं के ऋषि मुनि महात्मा किन किन के विषय में ऐसा नहीं सुना गया ? अमेरिका के संयुक्त प्रदेश में आज हजारों बल्कि लाखों ऐसे लोग मौजूद हैं जिनके लिये रोगों की चिकित्सा सिवाय ईश्वर में अनन्य भाव के और किसी प्रकार से करना अत्यन्त कठोर शपथ और अतिशय अश्रद्धा (कुफर=तिमिर पूजा) से भी बुरा माना जाता है ।

औषधि खाऊं न बूटी लाऊं न कोई वैद बुलाऊं ।
पूरण वैद मिले अविनाशी वाही को नबज दिखाऊं ॥

मौलाना जलाल रूमी ने भी कहा है—

शाद बाश ऐ अश अशे-सौदाय-मा ।
ऐ दवाए-जुमला इल्लत हाय-मा ॥
ऐ दुवाए नखवतो नामूसे-मा ।
ऐ त अफलातूनो जालीनूसे-मा ॥

अर्थात् ऐ मेरे पगलायन की बाह वा ! ऐ मेरे समस्त रोगों की औषधि ! ऐ मेरे घमण्ड और लज्जा की दवा ! ऐ मेरे अफलातून ! ऐ जालीनूस ! तू प्रसन्न हो !

हाल में Psychology of Suggestion—वैज्ञानिक खोज ने अमेरिका के सरकारी चिकित्सालयों में विना औषधि के चिकित्सा (अध्यात्म चिकित्सा) प्रचलित कर दी है । अकबर दिली, इस्लाम वा विश्वास, यदि राई के दाने भर भी हो तो पहाड़ों को हिला सकता है । मेरे प्यारे भारत के नवयुवकों ! तुम गई बीती अठारहवीं शताब्दि डेविड ह्यूम आदि के भरें में आकर मूर्खता का नाम विद्या मत रक्खो ।

इसलाम (विश्वास) को कम करने के स्थान पर अटल निश्चय और विश्वप्रेम बढ़ाते क्यों नहीं ? यदि विद्युत् और वाष्प की शक्ति वर्णन से बाहर है, तो मानवी हृदय क्या नहीं कर सकता ? प्रत्येक जाति और संप्रदाय के लिये विश्वप्रेम बढ़ाकर तो देखो। किसी एक जाति, संप्रदाय और देश विशेष का विचार न करके प्रत्येक प्राणी के साथ वह मानव-प्रेम जो सच्चा मनुष्य बनाता है, इतना आवेशपूर्ण उत्पन्न करो कि जितना परिवार के दो एक व्यक्तियों में खर्च कर रहे हो, फिर देखो यही संसारस्वर्ग के नंदनवन को मात करता है कि नहीं। क्या तुमने मन को शत्रुता से बिलकुल पवित्र और वैर से शीशे के समान साफ़ करने का कभी अनु-भव किया था ?

वफा कुनेमो-मलामत कशेमो-खुश बाशेम,
कि दर तरीकते-मा काफरी सत रंजीदन।

अर्थात् मलामत को उठाकर भी वफा करना व खुश रहना। यही बस कुफर है रञ्जीदा होना मेरे मज़हब में।

अगर यह परीक्षा अभी तक नहीं की तो तुम इसके फलों को रद्द करने के भी अधिकारी नहीं। योगदर्शन में लिखा हैः—

"अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।"

अर्थात् जब हम में विश्वप्रेम (अहिंसा) दृढ़रूप से स्थिर होजाय, तो आसपास के जंगली हिंसक विषधर आदि जीवों में भी शत्रुता नहीं रह सकती। अगर कर्म और फल action and reaction कार्य कारण की समानता का सिद्धान्त ठीक है तो ऐसा क्यों न होगा ?

ज्ञान के रूप में अज्ञान या प्रत्यक्षदर्शिनी बुद्धि की आध्यात्मिक अपक्वता के सार्वकालिक (chronic) हो जाने से संशय का

कठिन क्षयरोग पैदा होता है । यही तिमिरपूजा (अश्रद्धा) वा नास्तिकता है। इसलाम (श्रद्धा-विश्वास) और आध्यात्मिक जीवन को चुपके चुपके आस्तीन के सांप की तरह खा जाता है। पहलू में शक रखते हो ? इसके स्थान पर बंदूक की गोली क्यों नहीं मार लेते ? जिन्हें सर्व साधारण करामात या चमत्कार (अलौकिक चरित्र) कहते हैं, क्या उनके लिये विश्वास और चित्त की महत्ता की आवश्यकता है ? कदापि नहीं। विश्वास और चित्त की महत्ता तो व्यक्तिगत आनन्द है । जब कभी आप अपने बड़े अफसर की कोठी पर हाकिम से मिलने जाते हैं तो क्या आप हाकिम के उस कुत्ते के लिये जाते हैं जो कोठी के द्वार पर दुम हिलाता हुआ आकर आपके पैर सूंघता है ?

खर्के-आदत के वकार आयद दिले-अफसुर्दा रा,
गर खुद बर आब नतवाँ मोतकिदशुद मुर्दा रा।

अर्थात् अगर मुर्दा निश्चयात्मा बन कर पानी पर न चल पड़े तो मुर्दा चित्त के काम में करामात कब आ सकती है ?

दर्बारियों के इम्तिहान के लिये एक बार अकबर ने एक लकीर खींची और कहा कि इसे छोटा कर दो। कोई नीचे से कोई ऊपर से कोई बीच से लकीर को काटने लगा। अकबर बोला—"यों नहीं, यों नहीं, बगैर काटने के कम कर दो।" बीरबल ने उससे बड़ी लकीर पास में खींचकर कहा—"यह लो तुम्हारी लकीर छोटी हो गई।" वाह ! इसी तरह यदि तुम्हें किसी धर्म या संप्रदाय में ईर्ष्या है तो उस लकीर को काटते मत फिरो। धार्मिक उपद्रव ठीक नहीं। यह युक्ति यथार्थ नहीं। तुम अपने हृदय को उनके हृदय से विशालतर बना दो। अपनी प्रेमभक्ति को उनके प्रेम से बढ़ा दो। अपनी

मानव प्रीति को उनकी प्रीति से विस्तीर्णतर कर दो, अपने साहस को उच्चतर कर दो। सत्यस्वरूप (परमेश्वर) पर अपने विश्वास को बड़े से बड़ा (अर्थात् अकबर) बना दो। संसार की बाह्यमूलक, नामरूपों की चमक दमक, इस दृश्यमान् जगत की विचित्रता, असंख्य स्वरूपों का बहुरंगीपन, किसी की आंखों को भले ही अंधा कर दे, तत्त्वज्ञानी और प्रौफेसर (आचार्य) इस मृगतृष्णा में पड़े डूबे, हाकिम और अमीर इस मकड़ी के जाल में पड़े फँसे, पंडित और विद्वान् इन लहरों में पड़े गिरें,युवक और वृद्ध इस स्वप्न में पड़े मरें, लेकिन तुमको उस सत्यस्वरूप को कदापि न भूलना चाहिये। तुमको अपनी आंख सत्यात्मा से न उठाना ही उचित है। ए विश्वासी पुरुषो ! ए सम्यग् दर्शियो ! फिर देखो कि आनन्द किसकी डाह करता है और कैसे शत्रु है।

कुमरियाँ आशिक हैं तेरी सर्व[1] बंदा है तेरा,
बुलबुलें तुझ पर फिदा हैं गुल[2] तेरा दीवाना है।

* * * *

किला दुःखों का सर किया ढाया,
राज अफलाक[3] ओ महर[4] पर पाया।

हस्ते-मुतलक[5] सरूरे-मुतलक[6] पर,
झंडा गाडा, फुरेरा लहराया।

इस जगह गैर[7] आ नहीं सकता,
याँ से कोई भी जा नहीं सकता।

कर सके कुछ न तीर की बौछार,
खाली जाए बंदूक की भरसार।

---

(१) वृक्ष, (२) कुर्बान, (३) आकाश, (४) सूर्य, (५) सत्यस्वरूप, (६) आनन्द स्वरूप, (७) अन्य।

पुर्जे पुर्जे अलग हुए डर के,
धज्जियां जहल[1] की उड़ीं डर से।
मुझ को काटे कहां है वह तलवार,
दाग दे मुझको है कहां वह नार[2]।
मौत को मौत न आ जायगी,
कस्द[3] मेरा जो करके आयगी।
रूए-आलम[4] पै जम गया सिक्का,
शाहेशाहां हूं शाहे शाहंशाह।

यह दिखावे का हिन्दूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि विविध प्यालों की तरह हैं, जिनमें पवित्र विश्वप्रेम का दूध पिलाने का प्रयत्न समय समय पर होता रहा है। सच्चा धर्म वह निर्विकार प्राण है, जो इन सम्पूर्ण धार्मिक शरीरों के जीवन का कारण है।

मजहबे इश्क अज़ हमा मिल्लत जुदा अस्त।
आशिकाँ रा मजहब-ओ-मिल्लत खुदा अस्त॥

अर्थात् प्रेम का धर्म सब मतमतांतरों से भिन्न है क्योंकि प्रेमियों का धर्म और मत केवल परमात्मा मात्र है।

इन पुराने प्यालों की तरह हजरत अकबर ने भी एक नया जाम (प्याला) घड़ा था, अर्थात् नई रस्मों और नियमों में वही पुराना अमृत डाला था। इस नये प्याले का नाम रक्खा था

दीने–इलाही।

स्वतंत्रता का यह जल-पान-स्थान-था। हिन्दू मुसलमानों को दूध शकर कर देना इसका अभिप्राय था। प्याला खूब स्वच्छ था, मगर प्यालों से हमारी भूख या प्यास नहीं बुझ सकती।

---

(१) अज्ञान, (२) अग्नि, (३) इरादा, संकल्प, (४) संसार।

प्याले तो आगे भी बहुत धरे हैं। हमको तो दूध चाहिये या सुरा ही सही।

जिगर की आह जिससे बुझे जल्द वह शै ला।

जिगर की आग तो अद्वैत—अभेद के अमृत से बुझती है। अकबरदिली दरकार है, चाहे किसी प्याले में दे दो, पुराना हो कि नया, चितरेला हो कि सादा, सोने का हो या मिट्टी का।

मुफलिस हूँ तो कुछ डर नहीं हूँ मय से न खाली,
बिल्लौर से बेहतर हैं यह मेरा जामे-सिफाली।

माज कुरआँ मग्ज रा बरदाश्तेम्,
उस्तख्वाँ पेशे-सगाँ अंदाख्तेम्।

अर्थात् हम कुरान से मगज (तत्त्व) को ले लेते हैं और शब्दरूपी हड्डियों (फोक) को कुत्तों के आगे डाल देते हैं।

हिम्मते आली तलब जामें मुरस्सा को मबाग,
जाँकि बादारिंद अज जामे बिलोरी खुश अस्त।

प्याले की उपासना से विरोध बढ़ता है। यह सब के सब प्याले तो केवल मूर्तियां है। धन्य है वह सच्चे मस्त पुरुष को जो इन प्रतिमाओं से अर्थात् मूर्त्त स्वरूपों से अमूर्त्त को आया। मिथ्या नामरूप से सत्य स्वरूप को पहुँचा। स्वात्मानन्द के कारण प्याला जिसके हाथ से छूट गया, फूट गया और टूट गया।

कदहे बलबम······ ····बूद शिकस्ती रब्बी।

अर्थात् प्याला मेरे ओंठ तक गया और लगते ही, ए परमात्मा! टूट गया।

धन्य है वह कन्या को जिसके पर्दा को, जिसके गहनों कपड़ों को, जिसके नवविवाह के घूंघट को (अद्वैत) प्रेम-

स्वरूप पति स्वयं आकर उतारे। यह हार शृंगार, यह वस्त्र-भूषण भला पहने ही और किस लिये थे?

ईं खर्का कि मेपोशम दर रहने-शराब अला।

अर्थात् उत्तम सुरा को गिरवी रख कर मैं यह वस्त्र पहनता हूं।

यह मुबारक मोतियोंवाला मौला मतवाला जब वैष्णवों के मंदिर में जा निकले, तो कृष्ण की मूर्त्ति इससे मोती माँग ही लेती है, अर्थात् प्रेम के आंसुओं को निकलवाए विना नहीं छोड़ती।

हाथ खाली मर्दुमे दीदा बुतों से क्या मिले।
मोतियों के पंजाए-मुजगाँ में इक माला तो हो॥

नेत्रों से देख सकनेवाले लोग अपने प्यारों से खाली हाथ भला कैसे मिलें? उनके नेत्रों की पलकों के पँजे में प्रेमाश्रु की एक माला तो कम से कम होनी चाहिये। मुसलमानों की मसजिदों में गुज़र हो तो—"सिजदा मस्ताना अमबाशद नमाज़ मुसहफ रूश बुवद ईमाने-मन।" (अर्थात् मस्ती भरा झुकना मेरा निमाज़ है और प्यारे के चहरे का दर्शन मेरा ईमान होता।)—का हाल होता जाता है। बेशक "कुछ नहीं है सिवाय अल्लाह के"। ईसाइयों के गिरजों में वह खुदी (अहंकार) व जिस्मानियत (देहाध्यास) का सलीब (सूली) पर लटका हुआ दृश्य अपने साथ सलीब पर खींचे विना कब छोड़ता है?

नदारे आखिरत नै दारे दुनिया दर नजर दारम्।
जे अशकत कार चूँ मंसूर रा दारे दिगर दारम्॥

अर्थात् मेरी दृष्टि में न लोक की सूली है और न परलोक की सूली है। तेरे प्रेम के कारण मंसूर के समान मेरी सूली

दूसरी ही है।

सूली उपर सेज पिया की जिस पर मिलना होत।

अकवरदिली की आवश्यकता।

क्या यह अकवरादिली अकवर ही के लिये विशेषता रखती थी और हमारे तुम्हारे से विल्कुल विपरीत है? और क्या यह वादशाहदिली ज़ाहिरी वादशाह होने पर निर्भर है? कदापि नहीं। ईसा के साथ साथ नौसो घोड़े तो नहीं चलते थे, किन्तु उसके विभूतिमय हृदय की वदौलत लाखों नहीं करोड़ों योरप के निवासी ईसा के धर्म की लकीर पर चलने में मोक्ष मानते हैं, क्या तो वंजर,अरव और क्या अरव का एक अनपढ़ अनाथ वनवासी जिसके हृद्य में ईसलाम (निश्चय) की अग्नि भड़क उठी, विश्वास की वह्नि प्रज्वलित हो गई "ला इल्लाह इल्लिल्लाह" अर्थात् "नहीं है कुछ भी सिवाय अल्लाह के"। अरव के रेगिस्तान के निर्जीव रज-कण इस अग्नि ने वारूद् के दाने वना दिये और यह रेत की वारूद आकाश तक उछलती उछलती थोड़े ही काल में एशिया के इस सिरे से योरप और अफारिका के उस सिरे तक फैल गई। प्राची और प्रतीची को वाड़ा वना दिया। दिल्ली से ग्रेनाडा तक को घेर लिया। हाय! गजव! एक दिल, गरीव दिल, वादशाह का नहीं, विद्वान् का नहीं, एक उग्गी (अनपढ़) अनाथ का, और यह खुदादिली (ईश्वर परायणता)। यह कौन कहेगा कि वादशाहदिली (अकवर दिली) के लिये वाह्यरूप से वादशाह होना भी आवश्यक है? वरन् वाहरी वादशाहत तो वादशाहदिली की बटमार और वाधक है। वुद्ध भगवान् को वादशाहदिली के लिये वाहरी वादशाहत का त्याग करना पड़ा। ऊँट पर चढ़ कर

ऊँटे ने लेना तो टेढ़ी खीर है। दिखावे की सामग्री और संसारी वस्तुओं के बीच में रहकर पानी में कमल की तरह निर्लेप रहने का पाठ हमें आजकल दरकार है, और यह पाठ प्राचीन काल में महाराजा जनक, अजातशत्रु, भगवान् रामचंद्र और युद्ध क्षेत्र में 'एकत्वमनुपश्यति' का सुमधुर संगीत गानेवाले भगवान् श्रीकृष्ण जी दे गये थे। वही व्यावहारिक पाठ (आचरण में लानेवाला) आज तीन सौ वर्ष हुए सम्राट् अकबर ने स्पष्टरूप से हमें फिर दिया। सामयिक कर्त्तव्य यही है कि चाहे किसी अवस्था में हो अकबरदिली प्राप्त करो।

प्यारे भारत वासियो! निराश मत होजिये। यह बीज उगे विना नहीं रह सकते। अनन्त शक्तिरूप प्रकृति इस खेती की किसान है। विश्वास (ईमान) से आरी (तंग) हो तुम्हारे शत्रु, निश्चय से वेनसीब (निर्भाग्य) हो तुम्हारी बला! मेरे प्राण! मिट्टी के ढेलों में अन्न का बीज जो इस प्रकृति से उग पड़ता है, तो क्या तुम मनुष्यों के साथ ही ईश्वर ने मखौल करना था कि हृदय की भूमि में अकबर का बीज न उगेगा?

युद्ध क्षेत्र का जीत लेना तो तुम्हारे अकेले के अपने हाथ की बात नहीं। लेकिन दिल का मारना तो तुम्हारा निज का काम है, और सच तो यों है कि जो हृदय का मालिक हो गया वह संसार का मालिक हो गया।

मारना दिल का समझता हूं जिहादे-अकबर[1]।
वह ही गाजी[2] है वडा जिसने यह काफिर मारा॥

और यह जो कहा करते हैं:-

---

१ भारी धर्म युद्ध २ धार्मिक योधा

दिल बदस्त आवर कि हज्जे अकबर अस्त ।
अज हजारां काबा यकदिल बेहतर अस्त ॥

अर्थात् दिल को अपने वश कर लेना ही महान् यात्रा है। और हजारों काबा की अपेक्षा सब से एक दिल होना सब से उत्तम है।

काबा बनिगाहे-खलीले-आजर अस्त ।
दिल गुजरगाहे-जलीले- अकबर अस्त ॥

अर्थात् काबा तो हजरत खलील (मित्र) की दृष्टि से अग्निरूप है और दिल प्रकाशस्वरूप आत्मा के घूमने का स्थान है। हाँ, अपने ही दिल की विजय अर्थपूर्ण है, यदि बाह्य साम्राज्य तुम्हें प्राप्त नहीं तो कम से कम एक विलायत में तो शासक हो सकते हो। वह कौन ? दिल की विलायत, अन्तःकरण का साम्राज्य।

दिल पर भी न काबू हो तो मर्दानगी क्या है ?
घर में भी न हो सुल्लह तो फर्जानगी क्या है ?

सच्चा बादशाह तो वही है जो—

गमो-गुस्सा-ओ-यासो-अंदोह-तिर्मान् ।
अनादो-फसादो-असल हाय शैतान् ।

को अपनी विलायत में फड़कने न दे।

अगर तनरा न बाशद दिल मुनव्वर जेर खाकश कुन ।
नबाशद दर शनिस्तां इज्जते फानूस खाली रा ।

अर्थात् यदि देह में चित्त प्रकाशमान (प्रसन्न) नहीं, तो उसे मिट्टी में दबा दे, क्योंकि रात के समय खाली फानूस का मान नहीं होता।

शक्तिस्रोत।

सफलतादायक मेल केवल भलाई में हो सकता है। जो

लोग इन्द्रियों के दास रहकर उन्नति की आशा करते हैं, जो लोग बुराई की भावना से मिलते हैं, अविद्या के स्थिर रखने को मेल करते हैं, वह रेत के रस्से बटते हैं। उन्हें विकास-क्रम (evolution) का भाव, ईश्वरेच्छा का दबाव, अनुत्साह की नदी में जा डुबोता है। बल केवल पवित्रता में है। यह वह ईश्वरीय नियम है कि जिसकी आँखों में कोई लवण नहीं डाल सकता। लॉर्ड टेनिसन की रचनाओं में सर गेलाहेड कहता है:-

दस जवानों की मुझ में है हिम्मत।
क्यों कि दिल में है इफ्फतो-असमत॥

यदि थोड़ा बहुत अनुभव प्राप्त कर चुके हो तो अपने ही दिल से पूछो—ऐसा है कि नहीं? पवित्रता और सचाई, विश्वास और भलाई, इसलाम और अकबरादिली से भरा हुआ मनुष्य विद्योन्नति हाथ में लिये जब कदम बढ़ाता है, तो किसकी मजाल है कि आगे से हिल न जाय। अगर तुम्हारे दिल में विश्वास और सचाई भरी है, तो तुम्हारी दृष्टि लोहे के सितून चीर सकती है, तुम्हारे खयाल की ठोकर से पहाड़ों के पहाड़ चकनाचूर हो सकते हैं। आगे से हट जाओ, दुनिया के बादशाहो! यह शाहे-दिल तशरीफ ला रहा है, सख्त पत्थर की तरह देश में शताब्दियों के जमे हुए पक्षपात उसके पैरों की आहट पाकर उड़ जायँगे, अहल्या की शिला इस राम के चरण छूते ही देवी होकर आकाश को सिधारेगी। अकबरादिली के दण्ड से अविद्यारूपी समुद्र को मारो और वह सीधा रास्ता दे देगा। सब से पहले मुसलमान (मोहम्मद) का वचन है "अगर मेरी दाहिनी ओर सूर्य खड़ा हो जाय और बाईं ओर चन्द्रमा, और दोनों

मुझे धमका कर कहें कि "चल हट पीछे" तो भी मैं कभी नहीं हट सकता।"

चाहे ध्रुव अपने स्थान से टले तो टल जाय, और सूर्य उदय से प्रथम ही अस्त हो जाय, किन्तु साहसी पुरूष का साहस कभी नहीं टूटता, कभी भूल से भी उसके चेहरे पर बल नहीं आता। अंतःकरण की शुद्धि और भीतरी सचाई, अकबरदिली में यह शक्ति है। हृदय का भय इसके विना दूर नहीं होता। भय और भरोसा इसके विना प्राण खा जाते हैं और भीति वह व्याधि है कि पुरुष को कापुरुष बना देती है, सारी शक्ति के होते हुए भी कुछ होने नहीं देती। जैसे अंधेरे में प्रायः पापकर्म के सिवा और कोई कर्म नहीं बन पड़ता (The deeds of darkness are committed in the dark। इसी तरह जब भीतर विश्वास और अकबरदिली का प्रकाश न हो तो मनुष्य से कोई भारी काम प्रकट में बन नहीं पड़ता। जितनी पवित्रता और विश्वास हृदय में अधिक गहरा होगा, उतने ही हमारे काम अधिक प्रकाश में आवेंगे।

नफ्स बने चोफरो शुद बलंद मीगंदद।

अर्थात् श्वास जब बांसरी में नीचे उतरता है तो आवाज ऊंची होती है।

संसार के भय और आशंका—"ग़मो गुस्सा ओ यासो अंदोह हिर्मान्" तब तक तुम्हें जरूर हिलाते रहेंगे जब तक दुनिया के "नकशो निगारो रंगो बू ताज़ा बताज़ा तो बनो" (भिन्न भिन्न नाम रूप) तुम्हें हिला सकते हैं। और जब तुम संसार के प्रलोभनों और भयों से नहीं हिलते तो तुम संसार को अवश्य हिला दोगे। इसमें जो संदेह करता है, काफिर है।

मेल और एकता।

अकबरदिली का हिन्दी या संस्कृत अनुवाद होगा—महात्मा (महान्+आत्मा) अर्थात् बुजुर्ग रूह। वह मनुष्य अकबरदिल या महात्मा कदापि नहीं हो सकता, जिसका हृदय संकीर्ण अर्थात् एक छोटे से परिमित वृत्त में बन्द है, जिसकी सहानुभूति केवल हिन्दू, मुसलमान या ईसाई नाम से संबंधित है और इससे आगे नहीं जा सकती। वह तो असगरदिल (कृपणचित्त) है, अकबरदिल (उदारचित्त) नहीं, लघु-आत्मा है–महात्मा नहीं। अकबरदिल का तो हाल यह है

हर जान मेरी जान है हरएक दिल है दिल मेरा,
हाँ बुलबुलो गुल मेहरो मा की आँख में है तिल मेरा।

हिन्दू मुसलमान पारसी सिख जैन ईसाई यहूद,
इन सब के सीनों में धड़कता यकसां है दिल मेरा।

जापानी बच्चा स्कूल में जाने लगता है, तो एक न एक दिन नीचे लिखा वार्त्तालाप गुरू शिष्य में अवश्य छिड़ता है।

गुरूः—तुम कितने बड़े हो? इसके उत्तर में बच्चा अपनी आयु बताता है तो फिर गुरू पूछता हैः—तुम इतने बड़े क्यों कर हुए?

बच्चा कहता हैः—खूराक की बदौलत।

गुरूः—यह खूराक कहां से आई?

बच्चा—हमारे देश जापान की भूमि से उत्पन्न हुई।

बेशक अगर शाक आहार है तो सीधे रास्ते से, और यदि मांस आहार है तो पशुशरीर द्वारा देश की भूमि से तो आता है।

गुरूः—अच्छा, तुम्हारा शरीर अन्त में अर्थात् वास्तव में जापान की मिट्टी से फलता फैलता है और जापान ही ने बनाया है। यदि माता पिता से पैदा हुआ हो तो फिर माँ

बाप की शक्ति भी तो आहार ही से आती है।

बच्चाः—हाँ।

गुरूः—तो फिर जापान को अधिकार है कि जब उचित समझें तुम्हारा यह शरीर ले ले।

बच्चाः—जी हां, मेरा कोई बहाना उचित न होगा।

चलो इतनी बातचीत से देश पर प्राण समर्पण का खयाल छोटे बालक के प्रत्येक नस-नाड़ी में प्रविष्ठ हो गया।

प्रशंसा के पात्र हैं वे छोटे २ बच्चे जिनकी समझ में यह मोटी सी बात समा जाती है, और आचरण में आ जाती है। हमारे देश में इधर तो विद्वान् पंडित और उधर आलिम फाजिल मौलवी शताब्दियों में अभी व्यावहारिक रूप में इतना न समझें कि क्योंकि हम हिन्दू-मुसलमान एक ही माँ (हिन्दुस्तान) से पैदा हुए हैं और उसका दूध पीते हैं, क्यों कि हिन्दू और मुसलमाग दोनों के रगों और नसों में खून एक ही भूमि की वनस्पति, जल,वायु आदि से पैदा होता है, अतएव हम सगे भाई हैं। योरप के किसी देश का मनुष्य जब अमेरिका में जा बसता है तो तीन वर्ष के निवास में उसकी संपूर्ण सहानुभूति और प्रीति अमेरिका के पड़ोसियों से हो जाती है चाहे वह उसके सहधर्मी हों या न हों। यह नहीं कि शरीर तो अमेरिका में और मन उस पुराने देश में।

योरप के अधिकांश लोग ईसाई धर्म के हैं और कितने ही उन में ईसा के नाम पर प्राण न्योछावर कर देना परम आनंद समझते हैं, लेकिन उनमें से कोई भी ईसा की जाति को ईसा के देश को अपनी जाति या वर्त्तमान देश से अधिक प्रिय नहीं रखता। लेखक सप्रेम कहता है और प्रेम वह वस्तु है कि इसकी कठोरता भी सह्य होती है, प्यारे मुसलमान

भाइयो ! यह विभेद (फुट) क्यों कि कवि के कथनानुसार "सिर है कहीं, दिल कहीं, जाँ कहीं है ?"

हिन्दुस्तान में रहते हैं तो दिल हिन्दू लोगों से क्यों अलग रक्खे जायँ ? उधर हिन्दू पंडितों से हमारा यह कहना है कि मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र के शबरी के झूठे बेर, गरीब निषाद (मल्लाहे) से प्रेम, बन्दरों तक से मोहित कर देने वाली प्रीति, शत्रु के भाई पर वह अनुकंपा, जरा स्मरण तो करो और यह भी तो स्मरण करो कि निम्न लिखित 'पण्डित' की प्रशंसा कौन कर गया है ? दोनों ओर से लड़ने मरने को सेनाएँ डट रही हैं, सारे हिन्दुस्तान के वीरों के हृदय मारे क्रोध और द्वेष के मानो आकाश तक उछल रहे हैं, इस अवसर पर जिह्वा और शब्दों से जगद् गुरु (अखिल जगत के प्रकाश दाता) कैसे स्पष्ट और सुरीले गीत में तुम्हारे लिये संदेशा (या अनुशासन) छोड़ गया है। सहस्त्रों वर्ष हो गये, आकाश ने अपने डाकघर में इस चिट्ठी पर गुरु का नाम न पड़ने दिया, दूत पवन, उसे अपने अपने परों से बाँधकर उत्तर, दक्खिन, पूरब, पच्छिम, पुरानी दुनिया, नई दुनिया, जापान, योरप, अमेरिका सब कहीं पहुँचा आया। धन्य है इस कबूतर की प्रभु भक्ति को। अन्य देशों के लोग इस चिट्ठी पर आचरण करके दिन दूनी, रात चौगुनी उन्नति कर रहे हैं, पर हाय ! तुमने जिनके लिये यह श्रुति पहले पहल अवतीर्ण हुई थी, उसे व्यावहारिक बर्त्ताव के समय बहानों में ही टाल दिया।

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥ गीता अ. ५।

अर्थात्:-माहिरे इल्मो फन बिरहमन में
गाय में फील में कि दुश्मन में।

सग में संगकुश में यकनिगाही हो,
दिल में उल्फत और सफाई हो।

जिस में इस एकता की रंगत है,
वह ही पंडित है, वह ही पांडित है।

अनुवादः—विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, और गाय, हाथी, कुत्ता, और चण्डाल सब को पंडित बराबर देखते हैं ॥१८॥

जिन का मन बराबरी (साम्य) में स्थित है, उन्हों ने यहीं दुनियां को जीत लिया। ब्रह्म दोषरहित और सब में बराबर (सम) है, इस लिये वह ब्रह्म में हि स्थित है ॥ १९ ॥

"ढाई अच्छर "प्रेम" के पढ़े सो पंडित हो।"

पंडित तो वह है जिसके प्रेम के चक्षु खुले हुए हैं, जो ज्ञान और प्रेम के आवेश में पशु वनस्पति, वरन् पाषाण तक में भी अपना ठाकुर भगवान् देखता है और पूजता है। वह पंडित भला कैसे कहा जा सकता है जिसको मनुष्य की छाया से घृणा हो, मुसलमान को छूना पाप जाने और व्यवहार में पत्थर ही में भगवान् माने।

अकबर के पास इसके कोके की कई बार शिकायत आई। बार बार की बगावत और कई बार की साजिश की खबरें अकबर ने इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दीं। जब कोष के शुभचिन्तकों ने सख्त गिल्ला किया कि जहाँ-पनाह! इतनी नरमी और रिआयत क्यों उचित समझी जाती है? तो उत्तर दिया कि-"तुम लोग नहीं समझते कि मेरे और उस कोका भाई के बीच दूध की एक नदी बह रही है, जिसको चीरना मेरे लिये असंभव है। मैं भला क्यों कर उसका

वर्णन कर सकता हूँ ?" धन्य है !

अकवर और उसके कोका ने एक ही राजपूत-माँ का दूध पिया था। क्या हिन्दू और मुसलमान एक ही माँ (हिन्दुस्तान) का दूध नहीं पी रहे ? पिछली शिकायतें भूल जाओ, गिल्ले गुस्से सब माफ़ करो। रूठ मनाए गये !

गर जे दस्ते-जुल्फे-मुशकीनत खताए रफ्त रफ्त,
वर जे हिंदूए-शुमा बरमा जफाए रफ्त रफ्त।

गर दिले अज गमजए-दिलदार बारे बुर्द बुर्द,
दरमियाने जानो जानाँ माजराए रफ्त रफ्त।

अर्थात् अगर तेरे सुगन्धित वालों के हाथ से कोई अपराध हो गया है तो उसे हो जाने दे, और यदि तुम्हारे प्यारे से हम पर अत्याचार हो गया तो उसे हो जाने दो। अगर प्यारे के सैन से कोई दिल एक वार छीना गया तो छिन जाने दो। और प्रीतम प्यारे के बीच में यदि कोई झगड़ा हो गया है तो हो जाने दो।

तारे कब रोशनी से न्यारे हैं ?
तुम हमारे हो, हम तुम्हारे हैं।

* * * *

ए अदू ! ऐंठ ले बिगड, तन ले,
सख्त कहदे कि सुस्त ही कहदे।

जोश गुस्सा निकाल ले दिल से,
ताकते तैश आजमा तू ले।

* * * *

मुझें भी इन तेरी बातों से रोक थाम नहीं,
जिगर में धाम न कर लूं तो "राम" नाम नहीं।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकतायें।

राम की कुटी की खिड़की के बाहर कुमारी (पवित्र) बर्फ़ के सुन्दर टुकड़े यद्यपि बहुत वेग से गिर रहे हैं, तथापि उनकी शोभा बहुत अपूर्व है और सब पहाड़ बिलकुल 'शुभ्रता' हो रहा है, अर्थात् शुद्ध पवित्र हो गया है। राम ने अभी 'विकासवाद' (Evolution) की सब से नई पुस्तक पढ़ कर रख दी है।

नवीनता, प्रतिष्ठा किंवा लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा बहुधा लोगों को सत्य के मार्ग से विमुख रखती है। इस तरह की इच्छा को एक तरफ़ छोड़ कर और मन को शान्त रख कर अर्थात् दुःख से निराश न होकर और आत्म प्रशंसा (Self-flattery) से फूल कर यदि हम भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं के प्रश्न पर विचार करते हैं तो हमारे सामने उसकी ऐसी शोचनीय स्थिति उपस्थित होती है कि हम अवाक् रह जाते हैं। एक ही पवित्र देश में रहने से जो सम्बन्ध उत्पन्न होता है उसकी हम बिलकुल ही परवाह नहीं करते। और इसका तात्पर्य यह निकलता है कि हम में बन्धुत्व–का जातीय प्रेम का पूरा अभाव है। धार्मिक पन्थ के भेदों ने लोगों के मनुष्यत्व को ढक दिया है, राष्ट्रीयता की कल्पना को प्रायः लुप्त ही सा कर रक्खा है।

अमेरिका में भी कदाचित् अधिक नहीं तो हिन्दुस्तान के बराबर तो अवश्य ही पन्थ और मार्ग हैं। परन्तु थोड़े से उन खंफती लोगों को छोड़ कर जिनकी जीविका उनके पन्थ

पर निर्भर है, बाकी सब लोगों में यह कभी नहीं देखा जाता है कि वह अपने देशबन्धुता के भाव को अपने धार्मिक पन्थ की कल्पना के भावों के आधीन रक्खें, और यह विचार करें कि अमुक मनुष्य कैथोलिक है, मेथोडिस्ट है अथवा अमुक प्रेसबिटेरियन। निष्पक्षपात सत्य कहते हुए यह मानना पड़ेगा कि नाम मात्र का धर्माभिमान अमेरिका के लोगों में स्वाभाविक मनुष्यता किंवा प्राणिमात्र पर दया का लोप नहीं कर देता जैसा कि भारत में होता है। हिन्दुस्तान में मुसलमान लोगों को एक साथ और एकही जगह रहते हुए कई पीढ़ियां व्यतीत हो गई, परन्तु हिन्दुस्तान में अपने पास रहनेवाले हिन्दुओं की अपेक्षा वह दक्षिण योरप के तुर्कों के साथ सहानुभूति दिखाते हैं। एक बालक जो हिन्दू माँबाप के रक्तमांस से बना है, और ज्योंही वह ईसाई होता है त्योंही वह रास्ते के कुत्तों से भी ज्यादा अनजान अथवा अपरिचित बन जाता है। मथुरा का एक कट्टर द्वैतवादी वैष्णव दक्षिण के एक द्वैतवादी वैष्णव के लाभ के लिये क्या नहीं करता परन्तु वही वैष्णव अपने ही शहर के एक अद्वैतवादी वेदान्ती का मानभंग करने के लिये क्या कसर रखता है? यह सारा दोष किसका है? सब पन्थों के पक्षपात और ऊपरी ज्ञान ही का यह दोष है, "एकही जगह रहने वाले शत्रु"—ऐसा जो वाक्य हैं वह वर्तमान स्थिति का यथार्थ रूप से वर्णन करता है। एकराष्ट्रीयता का विचार मात्र भी एक अर्थहीन शब्द हो गया है। इसका कारण क्या है? इसका वास्तविक कारण निर्जीव भूतकालीन विधि का अन्धे होकर समर्थन करना और धर्म के पवित्र नाम से जो विचित्र और बेढब अज्ञान की शिक्षा दी जाती है उसके पूर्णतया दास होना ही है। अर्थात् (तस्मात् शास्त्रं प्रमाणन्ते) प्रमाणपालन का चिकना

चुपड़ा नाम देकर आध्यात्मिक आत्मघात करना है।

केवल उदार शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, सप्रयोग परीक्षण, अथवा तत्व शास्त्रीय विचार की पद्धति के अभ्यास से यह असत्य कल्पना दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं। आधुनिक शास्त्रशोधन से निकले हुए उत्तम और मनुष्य कर्तव्य सिखाने- वाले तत्व जिस पंथ या धर्म में न हों उसे कदापि यह अधि- कार नहीं है कि वह अपने भोले भक्तों पर उपजीविका करे। प्राचीन काल के बहुत से धार्मिक तत्व और प्रथायें राम के मत से तो केवल उस समय के जाने हुए शास्त्र के नियम और सिद्धान्त थे। परन्तु वाह रे दुर्दैव! वह तत्व जो पहले बड़े विरोध से माने गये, फिर इस उत्तेजना के साथ माने गये कि उनको जन्म देने वाली माता अर्थात् स्वतंत्र विचार और निदिध्यासन को बिलकुल ही भुला दिया गया, और बालकों को खिलाते खिलाते माता के प्राण लिये गये।

धीरे २ वह तत्व यहां तक मान लिये गये कि एक बालक मैं मनुष्य हूं यह समझने के पहले ही अपने को ईसाई, मुसलमान अथवा हिन्दू कहने लगा। जब धर्म पर चलने- वालों के आलस्य के कारण लोगों और पुस्तकों के प्रमाणों और ग्रन्थों के विस्तार पर, धार्मिक तत्व और नियम माने जाने लगे, और जब स्वयम्-अभ्यास, नवीनता की खोज, चातुर्य और ध्यान इत्यादि, जिससे धर्म स्थापकों ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रकृति और उसके नियमों का दक्षता के साथ अभ्यास किया था, लोप होने लगे, तब सृष्टि के नियमानुसार धर्म की अवनति आरम्भ हो गई। धीरे २ ईसा मसीह के पहाड़ी उपदेश अथवा वैदिक यज्ञों के असली उद्देश्यों को तिलांजली दी जाने लगी और उनकी जगह केवल खाली नामों से भरी जाने लगी, और लोगों की निष्ठा इन्हीं

पर अधिक बढ़ने लगी। केवल इतना ही नहीं हुआ किन्तु निर्जीव कलेवर की पूजा करने की अभिलाषा से आत्मा बाहर निकाल कर फेंक दी गई। इस प्रकार ईसा, मुहम्मद, व्यास, शंकर इत्यादि सरीखे सत्यनिष्ठ महात्माओं को ईश्वर का प्रतिनिधि या पैग़म्बर का नाम देकर कलंकित किया जाने लगा (क्योंकि पैग़म्बर ईश्वरी तेज के हरण करने वाले को कहते हैं)। और प्रकृति के मूल ग्रन्थ के सामने रखकर उनके ग्रन्थों का अपमान किया जाने लगा, क्योंकि प्रकृति के मूल ग्रन्थ ही से उन लोगों ने इधर उधर का थोड़ा बहुत ले लिया था।

राम के कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि लोकसंग्रह के लिये इन धार्मिक रीतियों का कोई उपयोग ही न था। किसी समय उनका उपयोग अवश्य था। इन रीतियों की आवश्यकता ठीक वैसी ही थी जैसे किसी बीज की बाढ़ के लिये यह आवश्यक है कि वह बीज एक छिकले से कुछ काल तक ढका रहे। परन्तु उस नियमित काल के पश्चात् अर्थात् उस बीज के कुछ उगने पर यदि वह छिकला नहीं गिरेगा तो वह बढ़ते हुए दाने के लिये एक कारागार बन जायगा और उसकी बाढ़ को रोकेगा। हमें दाने का विशेष ध्यान रहना चाहिये क्योंकि छिकले को गिराने के लिये अर्थात् उन अकड़नेवाले दूसरों के विचारों को दूर करने के लिये और प्रकृति के ग्रन्थ को पढ़ने के लिये प्रत्येक मनुष्य को यह अनुभव करना आवश्यक है कि, एक पैग़म्बर (भविष्यवक्ता) की शक्ति मेरा भी जन्मसिद्ध अधिकार है और उसमें कोई बात अलौकिक नहीं है।

बहुधा लोगों के ध्यान में किसी मकान का ढांचा या नक़्शा उस समय तक नहीं समाता, जब तक कि मकान

बनकर उनके सामने तैय्यार न हो जाय। इसी प्रकार कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनके ध्यान में वर्तमान काल अथवा भूत काल से एक परमाणु भी आगे बढ़ने का विचार नहीं आता। परन्तु आशा की जाती है कि ऐसे लोगों की संख्या भारतवर्ष में बहुत न्यून होती जाती है। कार्यक्षम वेदान्त (Dynamic Vedant) का अभिप्राय जैसा राम ने समझा है, यह है कि लोगों को अनिश्चित उतार चढ़ाव के उस पार कर दे और उनके स्वाभाविक ऐश्वर्य का, ऐक्यता का, और जिससे वह मिलें उससे मित्रता का, अनुभव करा दे और स्वाभाविक भेदभावों से एक स्थायी व स्वाभाविक मेल प्राप्त करा दे। ऐसे वेदान्त की किस देश में आवश्यकता नहीं है? किन्तु भारतवासियों को इसकी अत्यन्त आवश्यकता है।

भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये, प्रेम और प्रकाश को फैलाने के लिये राम एक चैतन्य मठ (जीवन संस्था) खोलने के लिये प्रस्ताव करता है, जिसका विशेष विवरण छोड़ कर संक्षेप वर्णन यह है।

स्थूल रूपरेखा।

धर्म और दर्शन। इस मठ में पहले भिन्न २ धर्मों और दर्शनों का मुक़ाबिले (प्रतियोगित) के साथ अध्ययन किया जायगा। अभ्यासियों को प्राचीन और अर्वाचीन धर्मों और दर्शनों को न्यायकारी या साक्षी की भांति पक्षपातरहित होकर अध्ययन करने में सहायता दी जायगी। हर एक विद्यार्थी को अपनी योग्यता के अनुसार धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन करना पड़ेगा और यदि आवश्यकता होगी तो कोई अध्यापक अवश्य सहायता देगा। सायंकाल के समय सम्पूर्ण सभा के सन्मुख उस विद्यार्थी ने जो कुछ दिन भर में पढ़ा है, उसे सब वर्णन करना पड़ेगा

और उसे यह भी वर्णन करना पड़ेगा कि पढ़ने के समय उसके मन में क्या २ विचार उत्पन्न हुए थे। इन संक्षिप्त आवेदनों को सुनकर हर रात्रि को राम की देख रेख में एक छान बीन करने वाली किन्तु आदरणीय वार्तालाप इस अभिप्राय से हुआ करेगी, कि जिन विषयों को मठ के भिन्न २ सभासदों ने अध्ययन किया है, उनमें मेल प्रकाश किया जाय। इस प्रकार आपस में मेल और प्रेम बढ़ेगा और हर एक सभासद दूसरे सभासदों के मानसिक परिश्रम से लाभ प्राप्त करेगा। और उसके बदले में अपने मानसिक परिश्रम के फल को सब के सन्मुख उपस्थित करेगा। वर्तमान आवश्यकतानुसार इकट्ठे होकर एक साथ काम करने से मानसिक कार्य के प्रभावों का अधिक प्रचार होगा और सच्ची विद्या का विकाश होगा।

नये प्रवेश हुये विद्यार्थियों को धर्म और दर्शन की सहायता से, जिसकी मांग भारतवर्ष में बहुत है, मेल के साथ विद्याध्ययन पद्धति का स्वाद चखाया जायगा

तत्व शास्त्र।

और फिर विज्ञान की भिन्न २ शाखायें अर्थात् वनस्पतिशास्त्र, प्राणिशास्त्र, विद्युत्शास्त्र, भूगर्भशास्त्र, रसायन शास्त्र, खगोल-शास्त्र आदि भी उनके अध्ययन में प्रवेश की जायँगी। इन विद्याओं को उनके अभ्यासक्रम में प्रवेश कराते ही एक पुस्तकालय और रसायनशास्त्र की प्रयोगशाला, वेधशाला और इस प्रकार के बहुत से दूसरे भवन स्थापित हो जायँगे।

इस मठ में उपरोक्त विद्याओं का प्रचार करने से यह अभिप्राय है कि थोड़ा सा प्रकट (चमकता हुआ) धार्मिक मिथ्याबोध दूर हो जाय। लोगों का परिश्रम और पराक्रम अधिक लाभदायक और बुद्धिमत्ता के कार्यों में लग जाय। इस मठ में विज्ञान का पठनपाठन धार्मिक उत्तेजना के साथ

होगा। विद्या, शिल्प तथा और २ काम भी जो देखने में लौकिक प्रतीत होते हैं, यहां इस अभिप्राय से प्राप्त किये जायँगे कि वेदान्त की आत्मा का संगठन काम काज के साथ कर दिया जाय, अर्थात् अभ्यासयुक्त व्यावहारिक वेदान्त प्राप्त हो। कहा जाता है कि अगेसिज़, जो भौतिक शास्त्र का एक बड़ा भारी पंडित था, अपनी प्रयोग शाला को प्रार्थना मंदिर से कम पवित्र नहीं समझता था और न किसी भौतिक तत्व को एक नैतिक तत्व से कम समझता था। प्रकृति की भिन्न भिन्न वस्तुओं में एक ही व्यवस्था का पता लगाना उसके समीप परमात्मा के विचारों को पुनः २ विचार करना था।

कारीगरी और शिल्प विषय।

ठीक समय पाकर इस मठ में एक तीसरा भाग भी आरम्भ किया जायगा अर्थात् कला कौशल और शिल्प विद्या का भी प्रारम्भ किया जायगा। क्योंकि कला कौशल और शिल्प विद्या की आजकल भारतवर्ष में विशेष न्यूनता है। इस शोचनीय अवस्था के विषय में इस समय कहने की कुछ आवश्यकता नहीं मालूम होती।

अमेरिका और यूरुप के कई बड़े २ विश्वविद्यालय जैसे यल, हार्वर्ड, स्टेनफोर्ड, शिकागो इत्यादि, लोगों के निज के विश्वविद्यालय हैं। बड़े शोक की बात है कि भारत के लोग अपनी शिक्षा के लिये सरकारी शिक्षा का मुंह निहार रहे हैं और अपनी आवश्यकताओं पर किञ्चित् मात्र भी ध्यान नहीं देते।

इस चैतन्यमठ में, जिसका राम ने प्रस्ताव किया है, महा कट्टर और घोर नास्तिक पुस्तकों का भी तत्व-निर्णय के विचार से आदर और स्वागत किया जायगा। "सत्य, संपूर्ण सत्य और केवल अव्यवच्छिन्न सत्य" यही इस मठ का मुद्रा लेख रहेगा।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

हिमालय ।

पवित्र गंगा राम की विरह को न सह सकी। मास भर न होने पाया था कि उसने राम को फिर अपने पास बुला लिया। सारी स्वाभाविक सभ्यता को भूल वह उसके ऊपर हर्ष के अश्रुकण बरसाने लगी। प्यारी गंगी ! गंगोत्तरी में तुम्हारी दिन २ बढ़ती छवि की छटा और पल २ के चंचल कलबल को कौन वर्णन कर सकता है ! गोरे २ गिरि और भोले २ देवदार—यही तुम्हारे साथी हैं। उनका सीधा सच्चा स्वभाव कैसा प्रशंसनीय है। वृत्त तो विशेष कर पारसी कवि की प्रेयसी से ऊंचाई में बराबरी का दावा करते हैं। और उनकी मधुर २ मरुत् तो बस अपूर्व ही है। वह चित्त को उत्तेजित व उल्लसित और मन को दूना करती है।

यहां पर यह कितना भली भांति मालूम होता है कि "परमात्मा पत्थरों में सोता है, लताओं में श्वास लेता है, पशुओं में चलता फिरता है और मनुष्यों में जीता जागता है।"

यम्नोत्तरी से चलकर यात्री लोग गंगोत्तरी दस दिन से कम में नहीं पहुंचते। राम यम्नोत्तरी से जाने के तीसरे ही दिन वहां पहुंच गया। वह ऐसे रास्ते से गया जिस पर अभी तक किसी मैदान में रहने वाले ने पैर भी नहीं रक्खा था। पहाड़ी लोग इस मार्ग को छाया मार्ग कहते हैं। तीन रातें लगातार सुनसान जंगली गुफाओं में बिताईं। न कोई कुटि मिली और न झोपड़ी। यात्रा भर में कोई दो पैर वाला जीव भी न दीख पड़ा।

क्यों—यह मार्ग छाया मार्ग क्यों कहलाता है? प्रायः साल भर उसमें छाया ही छाया रहती है। वृक्षों की छाया? नहीं नहीं। भला ऐसी बेढब उंचाई और ऐसी शरद् वायु में वृक्षों का कौन काम? अधिकतर यह मार्ग मेघों ही से ढका रहता है। यम्नोत्तरी और गंगोत्तरी के आसपासवाले ग्रामों के गोपगण अपने २ झुण्डों को चराते हुए हर साल दो तीन महीने काटते हैं। अकस्मात वे लोग बर्फ से ढके हुए बड़े २ गिरि शिखरों के पास मिले। बन्दर पुच्छ और हनुमान मुख के निकट ही उनसे भेंट हुई थी। येही दोनों गिरिशृंग दोनों सरिता स्वसाओं के सोतों को मिलाते हैं। यों ही इस मार्ग का पता मिला।

फूलों की वहां इतनी घनी उपज है कि सारा मार्ग का मार्ग एक ज़री का खेत सा दीख पड़ता है। नीले, पीले, बैंजने-भांति २ के फूल जंगल में भरे पड़े हैं। ढेर के ढेर कमल और बनफशे, गुलेलाला और गुल बहार—सौ २ वर्ण के एक एक फूल; गगलधूप, ममीरा, मीठा तेलिया, सलद मिस्री आदि अनेक रुचिर रंगिनी लतायें; केसर, इत्रसू आदि अपार महा मधुर सुगन्ध से भरे पौधे, भेड़ गद्दे, तथा तुहिन शीकरों से भरे-गर्भौवाले गर्बीले ब्रह्मकमल, इन सबों ने तो गिरिराज को मानो स्वर्ग लोक और मृत्युलोक के स्वामी का प्रमद्वन ही सा बना दिया है।

रंग रंग हे रंग! प्रेमसीमा मनहारी,
भाषा परम विराट तुम्हारी है उपकारी।
सुन्दरता का भेद भरा है जिसमें सारा,
देखा प्रकृति परे अधिक अधिकार तुम्हारा।
ये भाषा के रूप जगत् प्रभु को भाते हैं,
वे ही उसके अमित हर्ष को दरसाते हैं।

"गोल चाँद का जोवन फूट २ कर बाहर निकल रहा है।" चारों ओर सुन्दरता ही सुन्दरता बरस रही है। जिधर देखो उधर मरुद्गण निडर होकर खेल रहे हैं। जो मिलता है उसीको वे चुम्बन करते हैं। चटकीले चमकीले फूलों को तो वे खूब ही चूमते हैं। जगह २ पर गंध की धामनियां पवन के प्रवाह पर लहरें लेती हुई राम को ऐसी लग रही हैं जैसे मधुर मनोहर आनन्ददायक गान। मृदु और मधुर-प्रेमियों के विरह विलाप के वुन्दों सी मृदु और उनके मंजु मिलाप की मुसक्यान सी मधुर-वाञ्छित गंध की यहां बेहद बहुतायत है। इन बड़े २ विराट पहाड़ों की चोटियों पर ये सुन्दर २ खेत ऐसे बिछे हुए हैं जैसे कामदार क़ालीनें। देवताओ! यह भला तुम्हारी भोजन की मेज़ें हैं या नृत्य की भूमि? कल कल करते हुये नाले और दरारों और कगारों पर धड़ धड़ाती हुई नदियां—यह दोनों ही इन दिव्य दृश्यों में उपस्थित हैं। किन्हीं २ चोटियों पर तो दृष्टि को बिलकुल स्वतन्त्रता मिल जाती है। कुछ रोक टोक ही नहीं। बेखटके चारों ओर मनमानी दूर तक चली जाती है। न उसकी राह में कोई स्थूल शैल ही आ खड़ा होता है, और न उसके रास्ते को कोई रुष्ट मेघ ही रोकता है। कोई २ शिखरवरों को तो गगनभेदी और घनच्छेदी होने का इतना अधिक उत्साह है कि वह रुकना भूल ही गये हैं और उच्च से उच्च गगन मंडलों में लुप्त ही से हुए जाते हैं।

मानी महीधरों की महान् महिमा का वर्णन करते हुए उस मणिमय अरुणोदय की ओस को भूल जाना उचित न होगा, जिसने हमारे मार्ग की सुखमा को कुछ कम नहीं बढ़ाया था। अहा! देखो, वह कमलदल से लगा छोटा सा चंचल, चपल, सलिल ओसकण मनुष्य के मन का कैसा

अच्छा चिन्ह है। छोटा है, चपल है परन्तु अहा! कितना पवित्र है। कैसा स्वच्छ और चमकीला है। वह सत्य का सूर्य वह अनादि दीप्ति का प्रभाव मानों उसी के हृदय में स्थित है। अरे मनुष्य! क्या तू वही छोटा सा जलकण, वही ज़रा सा बुन्द है या तू अनन्त आदीप्त है। सचमुच तू वह तनिक सा बुन्द नहीं। तू "ज्योतिषां ज्योतिः" प्रकाशों का भी प्रकाश है। सब वेद यही कहते हैं। राम यही कहता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यह तेरा ही तेज और तेरा ही प्रकाश है जो ऐसे २ दिव्य देशों को ज्योति और जीवन से भर देता है। ऊपर नीचे, इधर उधर, चारों ओर तेरा ही तो प्रकाश और प्रतिभावान् मूर्ति विराजमान है। तू ही वह शक्ति है "जो किसी परिमाण की परवा नहीं करती परन्तु छोटे और बड़े सब से काम निकालती है।" तू ही उषःकाल को उसकी मुसक्यान देता है और तू ही पाटल पुष्प को प्रभा प्रदान करता है।

अर्ध रात्रि के छटा भरे तारे चमकीले,
प्रात समय के ओस बिन्दु समुदाय छबीले।
जो कुछ सुन्दर और स्वच्छ है अंश कहीं पर,
है तेरा ही नाथ सभी प्रतिबिम्ब मनोहर।
तारापति शुभ चन्द्र रात में स्वामी तू है,
संध्या की द्युति ओस प्रात में स्वामी तू है।
शोभा और प्रकाश यहां है जो कुछ भाया,
तूने ही निर्माण किया अरु जगत् सजाया।
है व्यापक तव तेज वस्तुएं जग की सारी,
कहती हैं चुप चाप "यहां है विश्वविहारी"।

उसी बाल कृष्ण (गोकुलचन्द्र) की यह लत थी कि वह

गोपियों का मक्खन चुरा २ कर मन माना खाकर बाक़ी बचा कुचा उन्हीं के बछड़ों और बकरियों के मुँह में लपेट देता था। वे बेचारे जीव जन्तु ही उन अज्ञान गँवारियों के धौल धप्पे सहते और गाली खाते थे। पर यह नन्हा सा प्यारा चोर तो हर बार सफाचट बच जाता था। वही आत्माओं की आत्मा जो चाहती है वह करती है। वास्तव में यह सब कुछ वही मायामय, वही नटवर, वही राम करवा रहा है। परन्तु उसकी माया भी बड़ी अद्भुत है। वही इस मिथ्या आत्मा को अर्थात् इस असत्य अहंकार को ज़ाहिरा ज़िम्मेदारी में फंसा देता है, इस माखनचोर कृष्ण को भोला कहो, चाहे नटखट, पर हे पाठक ! तुम भी वही हो। बाज़ीगर हो चाहे जादूगर हो, राम तुम्हारी भी आत्मा है। जो कुछ है वह तुम्हीं में है। एक और अनेक तुम्हीं सबको भरते हो। इस अकेले पीले शरीर रूपी छोटे से द्वीप ही में तुम बँधे हुये नहीं हो। नहीं, नहीं, तुम किसी के बंधु नहीं हुए हो। वह अभियुक्त अहंकार, वह असत्य आत्मा, तुम्हारी आत्मा नहीं हैं। तुम एक क्षुद्र बिन्दु नहीं हो। तुम अखंड अगाध महासागर हो।

(बाहरी रूप से मोहित होने वाले नेत्रों के लिये) राम का वर्तमान निवासस्थान एक सुघढ़ आनन्ददायक पहाड़ी कुटि, है। उसके आस पास एक हरी भरी और सुनसान प्राकृतिक वाटिका है। उससे गंगा का एक सुरम्य दृश्य दिखाई देता है। नारायण और तुलाराम दूसरी जगह रहते हैं। यहाँ पर रामबूटी बहुत उत्पन्न होती है। गौरयां और इतर पक्षी दिन भर मन माना शब्द उच्चारण करते हैं। वायु यहां की निरोगी है। गंगा का गायन और पक्षियों का गूंजना यहां पर सर्वदा स्वर्गीय उत्सव सा बनाये रखते हैं। यहां पर गंगा

की घाटी बहुत विस्तीर्ण है। मानो गंगा एक बड़े मैदान में बहती है, परन्तु प्रवाह बहुत ज़ोर का है। तथापि राम ने कई बार उसे मझा कर पार किया है। केदार और बदरी ने बड़े प्रेम से अनेक बार राम बादशाह को आमंत्रित किया है। परन्तु प्यारी गंगी को विरह की कल्पना मात्र से बहुत दुःख होता है, और उसका मुखचन्द्र म्लान पड़ जाता है। राम उसे अप्रसन्न नहीं करना चाहता और न उसे उदास होते हुए देख सकता है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

सुमेरु दर्शन ।

जिस समय राम यम्नोत्री की गुफाओं में रहता था तो चौबीस घंटे में एक वार माछीं (एक प्रकार का धान) और आलू खाता था। इससे अजीर्ण हो गया। लगातार तीन दिन तक सात २ वार शौच क्रिया करनी पड़ी। इस अस्वस्थ अवस्था के चौथे दिन वड़े तड़के गर्म झरने में स्नान करके राम सुमेरु यात्रा को निकला और केवल कोपीन के, शरीर पर न तो कोई वस्त्र था, न जूता न साफा, न छाता। पांच हट्टे कट्टे पहाड़ी, खूब गरम कपड़े पहने हुए उसके साथ हो लिये। नारायण और तुलाराम नीचे घरसाली को भेज दिये गये थे।

आरम्भ में हमें नन्ही सी यमुना को तीन चार वार पार करना पड़ा। फिर पैंतालीस गज़ ऊंचा और डेढ़ फरलांग लंबा एक वर्फ़ का प्रचंड ढेर दिखलाई दिया, जिसने यमुना की घाटी को रोक रक्खा था। दोनों तरफ़ दो सीधी दीवारों की तरह पहाड़ खड़े थे। क्या इन्होंने आपस में सलाह करली है कि राम बादशाह को आगे न बढ़ने देंगे? कुछ परवाह नहीं। वज्र प्राय दृढ़ निश्चय के सामने सारी रुकावटों को भागना पड़ता है। पश्चिम की तरफ की पहाड़ी दीवार पर हम लोग चढ़ने लगे। कभी कभी हमें अपने पैर टेकने के लिये कुछ भी आधार न मिलता था। सुवासित परन्तु कटील गुलाब की झाड़ियों को पकड़ कर और 'चा' नामी पहाड़ी और कोमल घास के सहारे अपने अंगूठों को टिका कर हमें अपने शरीर को सँभालना पड़ता था। किसी किसी

समय हममें और मृत्यु में केवल एक इंच का अन्तर रह जाता था। यदि हममें से किसी का पैर ज़रा भी फिसलता तो उसका यथायोग्य स्वागत करने के लिये एक बड़ा गहरा गढ़ा यमुना की घाटी में वर्फ़ का शीतल बिस्तर बिछाये हुए, क़बर की तरह मुंह खोले खड़ा था। नीचे से यमुना का कल कल करता हुआ शब्द मन्द २ सुनाई देता था मानो ढकी हुई ढोलक से शोकगीत की ध्वनि आ रही है। इस तरह से पौन घंटे के लगभग हम को मौत के जावड़े में चलना पड़ा। सचमुच वह एक विलक्षण ही स्थिति थी। एक तरफ़ तो मृत्यु मुंह खोले खड़ी थी और दूसरी ओर प्रफुल्लित और उल्लसित करने वाली सुगंधयुक्त वायु थी। इस विकट और विचित्र साहस से हम अन्त में उस प्रचंड वर्फ़ के ढेर के पार पहुंचे। यहां से यमुना का साथ छूट गया और सारी मंडली ने एक सीधे पर्वत पर चढ़ाई की। न वहां कोई रास्ता था न पगडन्डी। एक खूब घने वन से होकर निकले। वहां पर हम वृक्ष की लकड़ियों को भी नहीं देख सकते थे। राम की देह कई जगह खुरच गई। इस ओक और वर्च वृक्षों के बन में एक घंटा दौड़धूप करने के पश्चात् हम लोग खुले मैदान में पहुंचे, जहां छोटे २ वृक्ष उगे हुये थे। हवा वदली हुई थी परन्तु मधुर सुवास से भरी हुई थी। इस चढ़ाई से पहाड़ी लोग हांपने लगे। राम के लिये भी वह एक अच्छा व्यायाम हो गया। अस्सी फुट या उससे भी अधिक उतार चढ़ाव चढ़ना पड़ा। ज़मीन बहुत करके फिसलनी थी। परन्तु चारों ओर के सुन्दर दृश्य, मनोहर पुष्प समूह और हरियाली की भरमार ने मार्ग की कठिनता को भुला दिया। यूरोपियन बाग़बान, कम्पनी बाग़ों को सुशोभित करने के लिये यहां से फूलों के वीज ले जाते हैं। और अंग्रेज़ी बोलने वाले अज्ञान

हिन्दुस्तानी तरुण इनको विलायती फूल कहते हैं। परन्तु अधिकांश फूलों में एक अद्भुत बात यह है कि जब यह किसी दूसरे स्थान पर लगाये जाते हैं, तो उनमें सुगन्ध नहीं रहती यद्यपि उनका रंग पूर्ववत् ही बना रहता है।

यूरोपीय शिक्षा में चूर तरुण गण अपने यूरोपीय अध्यापकों के लिखे हुए ग्रन्थों में वेदान्त का प्रतिध्वनि मात्र पढ़ कर यह समझ लेते हैं कि ये पाश्चात्य कल्पना है। और उन पर लट्टू हो जाते हैं परन्तु इन बेचारों को यह मालूम ही नहीं है कि वह कल्पनारूपी कुसुम जिन पर वे इतने मोहित हो गये हैं, उनकी ही मातृभूमि से ले जाकर वहां लगाये गये हैं। अन्तर केवल इतना है कि यूरोपीय अध्यापकों के हाथ में जाने से इन दिव्य फूलों में त्याग रूपी वैराग-सुगंध नहीं रहती। यूरोपियन लोगों के प्रतिपादित किये हुए वेदान्त में तत्वज्ञान का बाहरी रंग और आकार तो अवश्य रहता है परन्तु अनुभव रूपी सुगंध नहीं रहती।

"अक्से गुल में रंग है गुल का व लेकिन बू नहीं"

राम की अस्वस्थता का क्या हाल हुआ? राम उस दिन बिलकुल अच्छा हो गया। न कोई बीमारी थी, न थकावट थी, न और किसी प्रकार की शिकायत थी। उन पहाड़ियों में से कोई भी राम से आगे न जा सका। हम सब बराबर चढ़ते चले गये। और मंडली के प्रत्येक मनुष्य को खूब क्षुधा लगी। इस समय हम लोग ऐसे प्रदेश में पहुंच गये थे जहां मेघ जलरूप वृष्टि कभी नहीं करता, परन्तु यथेच्छ बर्फ रूप से गिरता है।

इस ऊंचे, ठण्डे और रूक्ष पर्वत पर वनस्पति का नाम तक न था। हमारे आने के ज़रा पहले वहां पर नवीन बर्फ

की वृष्टि हुई थी।

राम के बैठने के लिये एक बड़ी शिला पर एक लाल कम्बल बिछाया गया, और रात्रि के उबाले हुए आलू उसको खाने के लिये दिये गये। संगी साथियों ने अपने सादे भोजन को बड़ी कृतज्ञता से खाया। बर्फ़ के (चम चमाते) हुए और हलके हलके टुकड़ों ने खूब अच्छा (ठोसं) पानी का काम दिया। भोजन करने के पश्चात् हम लोग फिर चल पड़े। धीरे धीरे हम लोग आगे और ऊपर चढ़ते ही गये। हम में से एक जवान थक कर गिर पड़ा। उसका दम फूल गया और उसके पैरों ने उसे आगे ले जाने से इनकार किया। वह कहने लगा कि मुझे चक्कर आता है। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया। थोड़ी ही दूर आगे गये थे कि एक साथी और मूर्छित होकर गिर पड़ा और कहने लगा कि मेरा सिर बड़े ज़ोर से घूमता है। कुछ काल के लिये उसे भी वहीं छोड़ा और शेष सब लोग आगे बढ़े। थोड़ी देर के पश्चात् तीसरा साथी भी धर रहा। उसकी नाक से खून निकलने लगा। दो बचे हुये साथियों को लेकर राम फिर आगे बढ़ा। तीन सुन्दर 'बरार' (पहाड़ी हरिण) हमारे सामने से जाते हुए दिखाई दिये। चौथा साथी किंचित् पीछे चलने लगा और अन्त में एक बर्फ़ से आच्छादित पत्थर पर गिर पड़ा।

आस पास कहीं पतला (Fluid) पानी नहीं दिखाई देता था परन्तु जहां वह मनुष्य पड़ा था वहां पत्थरों के नीचे से बड़े ज़ोर की घड़घड़ाहट सुनाई देती थी। राम के साथ इस समय भी ब्राह्मण था। वह एक लाल कम्बल, एक दुर्बीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुए था। श्वासोच्छ्वास करने को वायु बहुत सूक्ष्म होगई थी। जिस समय यहां पर दो गरुड़ पक्षी हमारे सिर के ऊपर उड़ते हुए निकल गये तो

हमें बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ। अभी हमें एक गहरे नीले रंग की, पुरानी बर्फ़ से ढकी हुई, दुःखदायी शिला चढ़ना बाकी था। उस फिसलनी बर्फ़ में पांव टेकने का आधार मिलने के लिये मेरा साथी सीढ़ियां बनाने लगा। परन्तु वह पुरानी वर्फ़ इतनी कड़ी थी कि उस बेचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। उसी समय हमें एक बर्फ़ के तूफ़ान ने आ घेरा। राम ने अपने साथी को यह कह कर धैर्य धराया कि 'इस वर्फ़ के गिरने से हमारा अहित होने की अपेक्षा हित होना ही ईश्वरीय उद्देश है'। और ऐसा ही हुआ भी। उस भयंकर वर्फ़ की वर्षा ने हमारे मार्ग को सुगम बना दिया। नोकदार जंगली लकड़ियों की सहायता से हम उस ढालू चट्टान पर चढ़ गये। और फिर जो कुछ हमने देखा उसका क्या कहना है। बस हमारे सामने एक खूब लम्बा चौड़ा सपाट और विस्तीर्ण मैदान वर्फ से ढका हुआ उपस्थित था, जिसे देख कर आंखें चौंधियाती थीं और चारों ओर रुपैहली वर्फ की शुभ्र ज्योति जगमगाती थी। आनन्द! आनन्द! क्या यह देदीप्यमान भासवत् दिव्य और अद्भुत क्षीरसागर तो नहीं है? राम के अद्भुत आनन्द की कुछ सीमा न रही। बस, कन्धे पर लाल कम्बल और पांव में कानविस का जूता पहने हुए राम बड़े वेग से वर्फ पर दौड़ने लगा। इस समय राम के साथ कोई भी नहीं है। ("आखिर के तईं हंस अकेला ही सिधारा")

लगभग तीन मील के वह वर्फ पर बड़े वेग से चला गया। कभी कभी पांव फस जाते थे और विशेष कष्ट उठाये विना बाहर नहीं निकलते थे। अन्त में एक वर्फ के ढेर पर वह लाल कम्बल बिछाया और संसार के गड़बड़ व उत्पात से मुक्त, जनसमूह के कोलाहल और क्षोभ से दूर 'अलिप्त'

अकेला, राम उस पर विराजमान हुआ। वहां पर बिलकुल सन्नाटा था। पूर्ण शांति का वहां पर साम्राज्य था। घनघोर अनाहद ध्वनि के अतिरिक्त वहां पर कोई शब्द नहीं सुनाई देता था। धन्य है वह शान्ति और एकान्त!

मेघपटल कुछ कुछ खुल चले। महीन बादलों से छन छन कर सूर्य की किरणें उस दृश्य पर पड़ने लगीं। और रुपैहली बर्फ अब तप्त सुवर्ण सी दिखाई देने लगी। इस स्थान का जो सुमेरु या हेमाद्रि नाम है वह बिलकुल यथार्थ है।

ए सांसारिक मनुष्यो! यह अच्छी तरह समझ लो कि तरुण युवतियों के कपोलों की आरक्त छटा, या दिव्य रत्नों और सुन्दर आभूषणों अथवा बड़े बड़े प्रासादों में सुमेरु की कल्पनातीत रमणीयता और मोहकता का यत्किंचित् अंश भी नहीं मिल सकता। और जब तुम अपने आत्मस्वरूप का अनुभव कर लोगे तो ऐसे २ असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने आप में दिखाई देंगे। सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी सेवा करेगी। मेघों से लेकर एक साधारण कंकड़ तक, श्याम रंग आकाश से लेकर हरी भरी पृथ्वी पर्यन्त, और गरुड़ से लेकर छछूंदर तक, जितने जीव संसार में हैं सब तुम्हारी आज्ञा मानने को तत्पर रहेंगे। कोई देवता भी तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन न कर सकेगा।

ए नभ! अब तू निर्मल हो जा। ए भारतवर्ष पर अज्ञान के आच्छादित मेघो! दूर हो जाओ। इस पवित्र भूमि पर अब अधिक मत मंडलाओ। ए हिमालय की बर्फ! तुम्हारा स्वामी तुम्हें यह आज्ञा देता है कि तुम अपनी पवित्रता और सत्य निष्ठा (ज्ञाननिष्ठा) को क़ायम रक्खो। द्वैतभाव से कलुषित जल कभी इस क्षेत्र-मैदान में मत भेजो।

अस्तु, मेघ विदीर्ण होगये। सारी वर्फ ने भगवा रङ्ग धारण कर लिया। क्या पर्वतों ने सन्यास ग्रहण कर लिया है? सचमुच उन्हों ने राम के सेवकों की वर्दी पहन ली है। क्या ही अद्भुत वात है? पर्वतों की वर्फ राम का सन्देशा ले जाने के लिये बड़ी आतुरता से उसका मुंह निहार रही है।

आ हा हा! आनन्द! वाह! आनन्द महा है।
दिव्य गोल संसार दृगों को लुभा रहा है॥
जग से इसका भेद नौगुना छिपा हुआ है।
यद्यपि हो असमर्थ दार्शनिक जन तो क्या है॥
वतलाने में भेद श्रमाकुल इसके मन का।
(वतलाता हूं तुम्हें एक गुर सच्चेपन का)॥
मिलकर धड़के हृदय प्रकृति का और तुम्हारा।
उदय अस्त पर्यन्त तुरत खुल जावे सारा॥

एक अमेरिकन साधू का कथन है कि सृष्टि एक कल्पना का अवतार अर्थात् रूपान्तर है। और जिस तरह वर्फ़ से भाप और पानी वन जाते हैं उसी प्रकार सृष्टि भी कल्पना रूप हो जाती है। यह दृश्य संसार मन का स्थूल रूप है। परन्तु यह चंचल स्थूल रूप पतला होते २ पुनः स्वतंत्र कल्पना में विसर्जित हो जाता है। और इसी से सेन्द्रिय अथवा निरिंद्रिय प्राकृतिक पदार्थों का मन पर अधिक और उत्तम प्रभाव पड़ता है। वद्ध, संकुचित और देहधारी मनुष्य विदेह मनुष्य से वार्तालाप करता है!

प्रश्नः—यदि यह जगत् मेरी ही कल्पना है (अर्थात् मन या कल्पना का स्थूल रूप है) तो वाह्य पदार्थ मेरी इच्छा के अनुसार क्यों नहीं वदल जाते?

उत्तरः—गौड़पादाचार्य कहते हैंः—स्वप्न सृष्टि में केवल कल्पना ही के दो पक्ष हो जाते हैं। एक पक्ष में तो वाह्य जड़

पदार्थ होते हैं और दूसरे पक्ष में अन्तःकरण की वृत्ति, इच्छा इत्यादि। ऐसी स्थिति में अन्तःकरण के विचार अपने अधीन और परिवर्त्तनशील होते हैं। और जब उनकी तुलना जड़ पदार्थों से की जाती है तो मिथ्या प्रतीत होते हैं। परन्तु बाह्य पदार्थ स्वतंत्र, शाश्वत् और सापेक्षित रीति से स्वयंसिद्ध मालूम होते हैं।

परन्तु वस्तुतः जागृत मनुष्य की दृष्टि से स्वप्न के सत्य और असत्य, बाह्य और आन्तरिक, दोनों ही भाग केवल काल्पनिक है। वे हमारी कल्पना हैं और हमने ही उनको उत्पन्न किया है। इसके अतिरिक्त जागृत अवस्था में मनुष्य स्थूल प्रत्यक्ष जड़ पदार्थ में और अप्रत्यक्ष कल्पना म स्पष्ट भेद कर सकते हैं। परन्तु स्वात्मानुभवी मनुष्य को सम्पूर्ण स्थूल पदार्थ और परिवर्त्तनशील कल्पना दोनों ही वस्तुतः स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होते हैं। और जब तक वे पदार्थ भासित होते रहते हैं, वे केवल उसको कल्पना स्वरूप से ही उस मनुष्य पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं। और यदि वे उसकी इच्छानुसार परिवर्तित नहीं होते तो भी वे हैं तो उसी की कल्पना। तुम्हारे बालों की बाढ़ का या तुम्हारे मुखारविन्द की प्रफुल्लता का कारण यद्यपि तुम्हारी बुद्धि नहीं बता सकती तो भी केश और चेहरे को तुम अपना ही समझते हो। उसी तरह से जीवनमुक्त अपने ही आत्मा को सब का आत्मा जानकर प्रत्येक पदार्थ को अपना ही स्वरूप समझता है। वह साक्षात् प्रेम की मूर्त्ति बन जाता है। और जब उसकी "एकमेवाद्वितीयम्" की ब्रह्मभावना सिद्ध हो जाती है, तब उसके लिये दृश्य और काल्पनिक भासमान् भेद दोनों आप ही आप मिट जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

भारतवर्ष की स्त्रियां ।

राम अब एक व्याख्यान का कुछ भाग पढ़ेगा, जो व्याख्यान लंदन में एक अंगरेज सन्नारी ने दिया था और जो भारतवर्ष के एक वर्त्तमान पत्र में भी प्रकाशित हुआ था। राम यह व्याख्यान आप लोगों को यह बतलाने के लिये पढ़ता है कि इस देश में भारतीय जीवन-व्यवहार और कुटुम्बव्यवस्था के सम्बन्ध में कैसे गलत और झूठे विचार फैले हुए हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि जो लोग भारतवर्ष में जायंगे, कुछ भी कार्य न कर सकेंगे। उनका यह अनुमान है कि वहां जातिभेद ने ऐसा प्रबल अधिकार जमा रक्खा है कि उनके साथ कोई भी अमेरिकानिवासी नहीं मिल सकता। ऐसे कुछ विचार उन मनुष्यों द्वारा फैले हुए हैं जिनका भारतवासियों से कभी भी संबंध नहीं रहा है।

जिस पर हम प्रेम करते हैं, उसके लिये जीवन समर्पण करना कितने बड़े सौभाग्य की बात है! अहा! कितने परम आनन्द की बात है!

प्रेम वही केवल कर सकता है जो अपने प्रेमपात्र के लिये प्राण अर्पण करने को निरन्तर प्रसन्नचित्त होकर तैयार रहता है! ऐसा प्रेम ही मनुष्य को जीवित रखता है और उससे महान् सेवा करा लेता है। ऐसे प्रेम की ही भारतवर्ष को आवश्यकता है। भारतवर्ष में कार्य करने जानेवाले अमेरिकन स्त्री पुरुषों को ऐसा ही प्रेम रखना चाहिये।

बहुत से गलत समाचार उन मनुष्यों द्वारा फैलाये गये हैं जो भारतीय जीवन को न देखते हुए भारत में रहते हैं। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे तुम एक पुस्तक को मोमजामे में लपेट कर पानी में डुबो देते हो, परन्तु पुस्तक के चारों

और पानी होते हुए भी वह नहीं भीगती। इसी प्रकार ऐसे मनुष्य भारत में रहते हुए भी भारतवासियों से नहीं मिलते और न उनमें प्रेम ही करते हैं। यहीं इस बात की एक स्त्री साक्षी दे रही है जो भारत में भारतीय रीति से रही है। राम चाहता है कि इसी स्त्री के सदृश अमेरिकावासी भारतियों से मिले। यदि तुम वास्तविक कर्मवीर बन करके जाओगे तो तुम्हें एक पाई का भी खर्च नहीं करना पड़ेगा। वहां लोग लाखों मनुष्यों का पालन पोषण कर रहे हैं। वहां के लोग निर्धन होते हुए भी अत्यन्त उदार हैं।

राम ने भारतवर्ष के साधुओं के पास कभी धन नहीं देखा। जब वे सड़कों से निकलते हैं तब सर्वदा यही समझा जाता है कि वे अपनी क्षुधा निवृत्त करने के लिये कुछ भिक्षा मांग रहे हैं। प्रत्येक भारतरमणी यह अपना ईश्वरदत्त कर्त्तव्य कर्म समझती है कि जो कोई क्षुधार्त्त मनुष्य उसके घर के सामने से निकले उसको भोजन दे और उसकी अन्य आवश्यकतायें भी पूरी करें। यदि कोई साधु एक ऐसी स्त्री के घर से सामने से निकला जिसके पास क्षुधार्त्त की क्षुधा तृप्त करने के लिये कुछ भी नहीं है तो ऐसी अवस्था में क्या होगा, यह राम ही भली भांति जानता है। निर्धन साधु को देने के लिये जब उसके पास अन्न न होगा तब उसके नेत्रों से करुणाजनक अश्रुप्रवाह बह निकलेगा। दरिद्र या भूखे मनुष्य के वस्त्र पहने हुए जो कोई व्यक्ति सड़क से निकलता है, तो वह साधु के समान समझा जाता है। साधु का अर्थ स्वामी ही नहीं है। यदि तुम भारत में हो और भूखे हो तो तुम्हारा आदर साधु के समान होगा। जिस किसी के पास द्रव्य अथवा वस्त्र नहीं है, वह साधु ही माना जाता है।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

आर्य माता ।

अमेरिका और इंग्लैंड में बहुधा कहा जाता है कि भारत वर्ष में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता और पति उनके साथ उचित प्रेम नहीं करते । यह बहुत ही असत्य विचार है क्यों कि भारतवर्ष में इस देश की अपेक्षा स्त्री का अधिक सन्मान और प्रेम होता है । इस देश में सर्व साधारण के समक्ष स्त्री के साथ प्रेम होता है, चुम्बन होता है, लाड होता है, परन्तु घर में जाते ही उसका अनादर होता है । भारत वर्ष में सर्वसाधारण के समक्ष पति स्त्री का कुछ आदर-सत्कार नहीं करता, उसके सामने भी नहीं देखता, परन्तु अन्तः करण में तो वह उसकी पूजा करता है *।

इस देश में स्त्री का सर्व साधारण के समक्ष व्यवहार अकेले की अपेक्षा अधिक महत्व का समझा जाता है, परन्तु भारतवर्ष में ऐसा नहीं है । वहां पति सर्व साधारण के समक्ष स्त्री की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देता, परन्तु हृदय में स्त्री के लिये अपना सर्वस्व अर्पण करने को तैयार रहता है । वह उसके सुख के लिये सब कुछ सह सकता है । अन्तर केवल इस बात में है कि भारत की स्त्रियां पुरुष के समान शिक्षित नहीं है । तथापि क्या इस देश में स्त्रियां उतनी शिक्षित हैं जितने कि पुरुष हैं ? भारत वर्ष में न तो पुरुष ही इतने शिक्षित हैं और न स्त्री ही हैं जितने कि यहां है।

आज कल सब दोष भारत वर्ष के विवाहसंबंध के

---

* यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।—मनुस्मृति ।

माथे मढ़ा जा रहा है; परन्तु यह ठीक नहीं है। इस प्रश्न का यह यथार्थ निराकरण नहीं है।

भारत वर्ष में पुरुष अपनी पत्नी को "मेरी स्त्री" कहने की धृष्टता नही कर सकता। वह अपनी पत्नी के संबंध मे बोलता हो तब "मेरी स्त्री" कह कर बात नहीं करता। इस प्रकार के शब्द वहां असभ्य, ग्राम्य, निंद्य, और निर्लज्ज समझे जाते हैं। भारत वर्ष में पुरुष इन शब्दों का कभी प्रयोग नहीं करता। जब वह अपनी स्त्री के संबन्ध में कुछ कहता है तब वह उसको अपने "लड़के की मा" ऐसे पर्याय नाम से पुकारता है—जैसे "मेरे कृष्ण की मा, मेरे राम की मा" इत्यादि।

\+ + + + + + +

भारतवर्ष में जहां यह नियम है कि प्लेग के रोगी के पास किसी को जाने की आज्ञा नहीं दी जाती थी, ऐसी एक झोपड़ी में एक बालक को प्लेग की बीमारी हो गई थी। इस बालक को रुग्णालय (हास्पीटल) में ले गये थे। एक वत्सल आर्य माता ने किसी प्रकार से रुग्णालय में प्रवेश प्राप्त किया। वहां वह रही और उसने रोग से पीड़ित बालक की सेवा करने के लिये कहा कि जो मरणासन्न हो रहा था अन्त में बालक की मा को भी आने की आज्ञा मिली और वह प्रिय बालक अपनी माता के चरणों पर सिर रख कर पड़े २ प्राण त्याग कर रहा था। पुत्र वत्सल माता की गोद में उसने प्राण त्याग किया। हिन्दू धर्म के अनुसार वह मृत्यु वैसी ही पवित्र भूमि में हो रही थी, जैसे एक ईसाई इसा के चरणों पर अपना मस्तक रख कर मृत्यु प्राप्त करता है। जब भारतवर्ष का एक बालक अपनी माता के अंक पर

सिर रखकर प्राण त्याग करता है, तब वह मृत्यु परम पवित्र मानी जाती है।

इस देश में तुम परमेश्वर को पिता के समान पूजते हो कि जो "पिता स्वर्ग में है"। भारतवर्ष में परमेश्वर की पिता के समान नहीं किन्तु माता के समान पूजा होती है। भारत-वर्ष की भाषा में "माता" का शब्द सब से प्यारा शब्द है। "माताजी" यह संज्ञा ही उनका परम प्रिय दैवत है,-उनका पूज्य परमात्मा है।

जब भारतवर्ष में कोई बीमार होता है, अथवा कोई महान् दुःख उसके सिर पर आ जाता है, तब उस समय उसके मुख से " मेरे प्रभु " शब्द नहीं किन्तु "माँ, माँ," के शब्द ही निकलते हैं। वही शब्द उसके शुद्ध अन्तः करण से निकलते हैं। हिन्दु के अन्तः करण की पवित्र भावना— "मा" शब्द से व्यक्त और व्याप्त होती है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

पत्र मञ्जूषा ।

(१)

१५ सितम्बर १६०३

परम प्रिय बालिके,

या मधुर कुमारी कमले !

तुम शुद्ध, निर्दोष और पवित्रों की पवित्र हो। तुम में कोई दोष नहीं है, कोई कलंक नहीं है, सांसारिकता का कोई धब्बा नहीं है, किसी प्रकार का भय नहीं है और कोई पाप नहीं है। क्या तुम ऐसी नहीं हो, प्रिय बालिके !

यदि तुम्हें कोई एतराज नहीं है तो निम्न लिखित विचारों को कविता के रूप में ग्रथित करो। इन विचारों को छन्दोबद्ध करने का प्रयत्न तुम्हें काव्यानन्द के उच्च शिखर पर रक्खेगा। यह एक फारसी कविता का अनुवाद किया गया है, जिसे राम ने आज प्रातः काल ही लिखा है। तुम पोर्टलैंड अथवा डेनवर में इनकी कविता बनाओ। अपने को तुम अब उनके योग्य बना लो। विचारों को कविता में लिखने के योग्य अनुकूल परिवर्तन करने का तुम्हें पूर्ण अधिकार है।

(१) ए आनन्दसागर ! तुम उन्मत्त क्रोध रूपी तरंग और आंधी से पृथ्वी और आकाश को समतल कर दो। सब विचार और चिन्ता खूब गहरे डुबा दो, और उन्हें टुकड़े २ करके छितर वितर करदो। अहा ! मुझे इन से क्या करना है

(२) आओ, हम खूब दिव्य आनन्दामृत का आकंठ पान करके मस्त हो जायँ। हम इतना पान करें कि देह का नितान्त

विस्मरण हो जाय। भेदभाव के विचारों को हम निकाल देते हैं, संकुचित अस्तित्व की दिवालों को गिरा देते हैं और स्वयंप्रकाश आत्मसूर्य की अन्तःकरण में संस्थापना करते हैं।

(३) ए दिव्य उन्माद ! ए निजानन्द ! आओ, शीघ्रता करो, सत्वर आओ, विलम्ब मत करो। मेरा चित्त अब इस अस्थि के पिंजरे से थक गया है, अब इस मन को तुझमें-तुझमें ही गोता लगाने दे। कृपया इसकी अब जलती हुई [संसार की] भट्टी से रक्षा करो।

(४) "मेरा और तेरा" की कल्पना पर अब आग लगा दो। सब प्रकार के भय और आशा को वायु के तुफ़ानों में बह जाने दो। भेद भाव को तोड़ दो और सिर और पैर में भेद मत समझो।

(५) मुझे रोटी की परवाह नहीं, जल की जरूरत नहीं। मुझे विश्राम मत करने दो। हे प्रेम की अमूल्य उत्कट प्यास ! अहा तू अकेली ही इस प्रकार के करोड़ों ढांचों (शरीरों) के पतन का प्रायश्चित्त करने के लिये समर्थ है।

पश्चिम का आकाश चमकता दीख रहा है,
तेज मनोहर सुन्दर कितना दीख रहा है !

उसको क्या आदित्य बनाता सुखमय ऐसा ?
है यह निस्सन्देह प्रकाश तुम्हारा ऐसा।

तुम्हारा प्रत्यक्ष आत्मा,

राम।

(२)

(राय साहब ला० बैजनाथ को भेजे हुए एक पत्र की नकल)

वसिष्ठाश्रम ।
२७ मार्च १९०६

धन्यतम परमात्ममूर्ते,

'पूर्ण शान्ति मम पास नदी सम बहती आती,
शान्ति समीरण लहरि के सम आ लहराती।
गंगा के निर्मल जल के सम शान्ति बहती,
नख शिख से सब रोम रोम से बह निकलती।
जल तरंग शान्ति सागर के ये जो उछले,
हृदय, हस्त और चरण सभी को ये हैं त्यागे।

ॐ आनन्द ! ॐ परमानन्द !! ॐ शान्तिः !!!

यह आश्रम (वसिष्ठाश्रम) हिम रेखा के ऊपर है। राम की गुफा के नीचे से वसिष्ठगंगा नाम की एक रमणीय (जल) धारा बहती है। इस धारा में पांच या छै झरने हैं। नदी की घाटी में पत्थरों पर शिवजी के हाथों से प्राकृतिक कुंड खोदे गये हैं जिनसे छोटे २ सुहावन बीस ताल बन गये हैं। शिखरें उन सत्य प्रकाशप्रिय गंगाजल के दृढ़ रात्तसों से ढंकी हुई है, जिनकी हरियाली उस समय भी नहीं मुरझाती जब कि उनके आसपास ८ फीट बर्फ जम जाती है। ये धन्य तरु-वर महान् वनमाली के प्रेम और कृपा के सर्वथा पात्र हैं, इसमें कोई शंका नहीं।

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुम् ।
पुत्री कृतोऽसौ वृषभध्वजेन ॥

(रघुवंश २ । ३६)

भावार्थः—पास के देवदारु वृक्ष तू देखता है ? वृषभध्वज श्री शिवजी ने उसका पुत्रवत् संवर्द्धन किया है।

महादेव जी के ये उरिद्वाहू और वज्रहृदय दो बालक ही केवल राम के साथी हैं। नारायण स्वामी भी राम से कम से कम दो वर्ष तक न मिलने के लिये फिर मैदान में (नीचे) भेज दिये गये हैं। यहां एक नवयुवान् नित्य आकर भोजन बना जाता है और रात्रि व्यतीत करने के लिये पास ही एक ग्राम में-जो ग्राम सब से निकट है और तीन मील से अधिक अन्तर पर होगा—चला जाता है॥

यहां से आधा मील चढ़ने से राम वशिष्ठ पर्वत के शिखर पर पहुँचता है। वहाँ से केदार, बदरी, सुमेरु, गंगोत्री, यम्नोत्री, और कैलास के हिमशृंग दिख पड़ते हैं।

केदार खण्ड (पुस्तक) में वासिष्ठाश्रम का विस्तार से वर्णन किया गया है। योगवासिष्ठ के रचयिता ने आश्रमपद के लिये यही स्थान पसन्द किया था। सुख की बात है कि यहां अभी तक कोई शहर या मार्ग निकट नहीं है। राम के आनन्द के विषय में मत पूछो। राम यहां एक अति महत्त्व का ग्रन्थ लिख रहा है। राम के उस ग्रन्थ से हर्षोन्मत्त शान्ति उस समय प्रकट होगी,जब वह कुछ वर्ष के पश्चात् नीचे मैदान में प्रकाशन के लिये भेजी जायगी। उस समय तक कृपया कोई न मिले।

परमात्मा ही केवल सत्य है।

देखा न शब जो यार को नूरे जिया से कार क्या ?
मुर्दे की कब्रे-तार को आबो-गिया से कार क्या ?
चाहे कोई भला कहे ख्वाह पड़ा बुरा कहे,
पल्ला छुटा जो जिस्म से बीमो-रजा से कार क्या ?
नेकी बदी खुशी गमी जीना थीं बामे-यार का,
जीना जला दो अब यहां पायीं बिया से कार क्या ?
ए हमके कोर ही को हैं उल्फते-मा सिवाये-हक,

काबा-ए-दिल में यह जना बूए-वफा से कार क्या ?
इतना लिहाज कर लिया दुनिया तेरा, परे भी हट।
नाचूं हूं साथ राम के शर्मो-हया से कार क्या ?

× × + +

अजदहा आजादी है मारे आस्तीं चश्म दोबीं,
गैर हक को जब नजर आये, जहां हो मार तोप।
खाक झूठी जिन्दगी पर, कब्र का कीड़ा न बन,
गोरे तन वहमे खुदी पर दे चला फिर मार तोप।
मालो-दौलत गीरो-दार, रक्तो बक्तो नक्दो जिन्स,
इज्जतो-माओ मनी का फार कर दे पार तोप।

भावार्थः—रात्रि को ही प्रियतम के दर्शन नहीं हुए तो दिन के सूर्यप्रकाश से क्या काम ? मुर्दे की अंधेरी कब्र को पानी और घास से क्या काम है ? चाहे कोई भला कहे या बुरा किन्तु देहाध्यास के नाश होने पर भय और आशा से क्या काम ? नेकी, बदी, हर्ष, शोक, प्रियतम की प्राप्ति की सीढ़ी थी, इस सीढ़ी को जला दो अब नीचे उतरने से क्या काम ? अन्धे मूर्ख को ही ईश्वर से अतिरिक्त किसी अन्य से प्रीति होती है, अन्तःकरण में ऐसा व्यभिचार (अव्यभिचारिणी भक्ति ही उपयोगी मानी जाती है) हो तब वफादारी की गंध से क्या काम ? हे दुनिया तेरा इतना लिहाज कर लिया, अब दूर हट, मैं जब राम के साथ नाचता हूं तो मुझे शर्म और लज्जा से क्या काम ?

यह द्वैत दृष्टि अजगर का डंग या आस्तीन का साँप है। ईश्वर से अतिरिक्त जहां कहीं द्वैतभाव दीख पड़े उसको तोप से मार। इस झूठी जिन्दगी पर खाक़ डाल। कब्र का कीड़ा मत बन। कब्र रूपी शरीर के अहंकार के भ्रम पर तोप चला कर मार। धन दौलत, द्रव्य संग्रह, ऐहिक वस्तु, भाग्य, नक़द

और अन्य पदार्थ, मानापमान,तथा ममत्व को तोप पार काम कर दे।

आप का प्रयाग कुम्भ का व्याख्यान विद्वत्त चातुर्ययुक्त था। इसकी एक प्रति टिहरी के महा उपहार स्वरूप दिया था। परन्तु प्यारे सुनो, वे ढोंग (वाग्वेदान्त) या (धर्म का) दंभ नहीं है, जगत् परमार्थतः सत्य नहीं। जो उसको सत्य स अवश्य नष्ट होता है।

हाँ, हाँ, हाँ, हाँ, ॐ

राम

